ओ३म्

आर्य वन विकास फार्म में आयोजित

षड्दर्शन एवं योग प्रशिक्षणशिविर

में भाग लेने वाले ब्रह्मचारियों का संक्षिप्त

परिचय एवं उपलब्धियाँ

— स्वामी सत्यपति परिव्राजक —
(शिविराध्यक्ष)

प्रकाशक-स्वामी सत्यपति परिव्राजक,
आर्यवन विकास फार्म रोजड़
पो. सागपुर जि. साबरकांठा
गुजरात पिन ३८३३०७

प्रकाशन (वितरण) तिथि-
चैत्र शुक्ला-१'२०४५ विक्रमी
(१८ मार्च '१९८८)

कुछ आवश्यक बातें

१. आज से लगभग दो वर्ष पूर्व एक योजना बनाई गई थी कि विशेषरूप से गुरुकुलों में व्याकरणादि पठित सुयोग्य ब्रह्मचारियों को स्वामीदयानन्द सरस्वती जी की मान्यतानुसार वैदिक दर्शनों का अध्यापन, योगप्रशिक्षण, वैदिक सिद्धान्तों का परिज्ञान, निष्काम-कर्म, यमनियमानुसार आदर्श जीवन–निर्माण का प्रशिक्षण दिया जाय। ईश्वर की महती कृपा से और अनेक सज्जनों के सह-योग से योजना पर्याप्त सफल हो गई है।

२. इस योजना में जो जो उपलब्धियाँ हुई हैं, उनमें से संक्षेप-रूप से इस पुस्तक में लिखी गई हैं।

३. जिन ब्रह्मचारियों ने इस योजना में भाग लिया है, उनका संक्षिप्त जीवन परिचय भी इसमें लिखा गया है। जीवन परिचय लिखने का मुख्योद्देश्य इतिहास की रक्षा करना है। वास्तविक इतिहास सत्यासत्य के जानने में एक प्रमाण है। इतिहास का ठीक ज्ञान न होने से महती हानि होती है।

४. आर्यवनविकास में रहकर जिस–जिस ब्रह्मचारी ने जो–जो उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, उनमें से कुछ को संक्षेपरूप से लिखा गया है।

५. इन उपलब्धियों को लिखकर सभी सज्जनों तक पहुँचाने के अनेक प्रयोजन हैं।

१. हमने सहस्रों लोगों के समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि दो वर्ष की योजना में हम यह कार्य करेंगे, उसके उत्तरदायित्व की सूचना देना कि हमने अपने कर्तव्य का इतने रूप में पालन किया है।

२. इस हमारे कार्य को देखकर दूसरे लोगों को भी उत्साह और प्रेरणा मिले।

३. वास्तविक वैदिक योग का, वैदिक दर्शनों की विद्या का देशदेशान्तर में प्रचार-प्रसार हो और सभी लोग वैदिक मार्ग पर चलकर अपना और अन्यों का कल्याण करें।

४. केवल भौतिकवाद को ही प्रधानता देने वाले लोग वैदिक मानव-निर्माण को समझें और उस पर चलें।

५. जो अज्ञान से अथवा अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये निराधार असत्य बातों का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं कि कि आर्यवन विकास में कुछ भी कार्य नहीं हो रहा है। वहां पर न कोई योग को जानने वाला है और न कोई दर्शन पढ़ाने वाला है और न कोई व्याकरण को जानता है, इत्यादि असत्य बातों का सब को ज्ञान हो जायेगा, तो स्वार्थी और अज्ञानी लोग इस विश्व-कल्याण के कार्य में बाधा उपस्थित नहीं कर सकेंगे। यदि सभी लोगों को यहां के उत्तम कार्यों को न बताया जाय तो असत्यवादी लोग सहयोग देने वालों को बह-का कर सब प्रकार की सहायता बन्द कर देवें। इससे संसार की महती हानि हो जाय।

६. जो व्यक्ति किसी विशेष गुण को प्राप्त करके दूसरों को नहीं बतलाता वह महान् दोषी है और उस विशेष गुण के न बतलाने से उस गुण का लोप भी हो जाता है। कोई भी विशेष उपलब्धि चाहे योग के विषय में हो और चाहे किसी अन्य विषय में हो, उसको सबके हितार्थ लेख वा वाणी से दूसरों को अवश्य ही बतलाना चाहिये। योगाभ्यास से होने -वाली उपलब्धियों को दूसरों को बतलाने में दोष होता तो

श्री पतञ्जलि ऋषि जो योगदर्शन में योग से सिद्ध होनेवाली उपलब्धियों का वर्णन क्यों करते ? और अन्य ऋषि भी दर्शनों और उपनिषदों में ब्रह्मसाक्षात्कार से होने वाले ज्ञान, आनन्दादि का वर्णन क्यों करते ? अतः यह मान्यता प्रमाण विरुद्ध है कि उपलब्धियों को बताना हानिकारक है ।

६. अब यहां पर दस ब्रह्मचारी हैं, आठ पुराने और दो नवीन हैं। एक ब्रह्मचारी ब्रह्मदेव जी यहाँ पर लगभग सात मास रहकर लगभग ढाई दर्शनों को पढ़कर कर्नाटक चले गये हैं और उनकी सूचनानुसार वे वैदिक धर्म का अच्छा प्रचार कर रहे हैं ।

७. इस दो वर्ष की योजना के अनुसार ही आगे तीन वर्ष की योजना बनाई गई है । आगे भी इसी प्रकार के ब्रह्मचारियों का निर्माण करने का विचार है ।

८. मेरी बुद्धि के अनुसार समस्त संसार के कल्याण के लिये मानवनिर्माण के क्षेत्र में आर्यसमाज की ओर से आर्यवन विकास में यह अद्वितीय कार्य सम्पन्न हुआ है । इसके लिये हम आर्यवन विकास के अधिकारी महानुभावों का, देशभर के समस्त संन्यासी महानुभावों, विद्वानों ब्रह्मचारियों, आर्यसमाजों व आर्यसज्जनों और आर्यमाताओं का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं ।

९. सभी सज्जनों से निवेदन है कि जो भी हमारी त्रुटि हो, उसे अवश्य ही हमको बतलावें । प्रमाण से सिद्ध होने पर उसे स्वीकार किया जायेगा और त्रुटि बतलाने वाले का उपकार माना जायेगा ।

१०. सभी सज्जन इस पुस्तक को विशेष ध्यान से पढ़ें और इससे लाभ उठावें । आशा है कि सभी महानुभाव तन, मन, धन से सहयोग देकर आगे की योजना को सफल बनावेंगे ।

भवदीय
सत्यपतिपरिव्राजक

मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय

ब्र० ज्ञानेश्वरार्यः

मेरा जन्म राजस्थान प्रान्त के नागौर नामक नगर में आश्विन शुक्ला सप्तमी, विक्रम–संवत् २००६ (२७ सितम्बर १९४९ ईस्वी संवत्) में हुआ। मेरे पिता का नाम श्री द्वारकादास मीनाकार था। बीकानेर नगर में स्थित अपने घर में मीनाकारी तथा जवाहरात के आभूषणों का निर्माण तथा विक्रय (ENAMELLER AND JEWELLER'S) का व्यवसाय होता था। घर में पौराणिक मत की मान्यताएँ प्रचलित थीं। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के माध्यम से मैंने अर्थशास्त्र विषय लेकर स्नातकोत्तर उपाधि (M.A.) प्राप्त की। महाविद्यालय के अध्ययन के साथ साथ घर के व्यवसाय में भी पूरा सहयोग करता था। एम. ए. प्रथम वर्ष करते हुवे मेरा सम्पर्क आर्यसमाज से हुआ। सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थों को पढ़ने से मेरी इच्छा किसी गुरुकुल में जाकर संस्कृत भाषा तथा वेदादि शास्त्रों को पढ़ने की हुई। घरवालों ने इस विचार का विरोध किया और मैं एम. ए. करने के पश्चात् एक वर्ष तक घर के व्यवसाय में ही लगा रहा, किन्तु आर्यसमाज के सत्संगों में निरन्तर जाने, साधु, सन्तों विद्वानों के व्याख्यान सुनने तथा स्वाध्याय करने से गुरुकुल में जाने की इच्छा तीव्र ही होती गयी। विवाह करने, गृहस्थी बनने से अनिच्छा हो गयी। घरवालों के विरोध करने पर भी एक रात बिना किसी परिवार के सदस्य को बताये चुपचाप घर से चल पड़ा। सौभाग्य से निकलने के कुछ दिनों बाद ही समादरणीय श्रीयुत स्वामी सत्यपति जी से सम्पर्क हो गया। आपने मुझे संस्कृत भाषा तथा व्याकरण पढ़ने, आचार्य श्री बलदेव जी नैष्ठिक के पास गुरुकुल कालवा जाने का निर्देश किया। आर्ष गुरुकुल कालवा, जि. जींद हरयाणा में लगभग साढ़े छह वर्ष तक रहकर अष्टाध्यायी क्रम से व्याकरण महाभाष्य तक

अध्ययन किया तथा कुछ अध्यापन भी किया। गुरुकुल कालवा से पुनः ज्वालापुर (हरिद्वार) में लगभग एक वर्ष तक रहकर गुरुकुल काङ्गड़ी के उपकुलपति प्रो. श्री रामप्रसाद जी वेदालङ्कार से निरुक्त शास्त्र का अध्ययन किया तथा स्वामी दिव्यानन्द जी, योग धाम ज्वालापुर से काव्यालङ्कार व छन्द. शास्त्र का भी कुछ अध्ययन किया। तत्पश्चात् पूज्य स्वामी सत्यपतिजी के ही साथ रहते हुवे आन्ध्रप्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों में २-३ वर्ष तक ५ दर्शनों व उपनिषदों का अध्ययन किया। दर्शनादि अध्ययन के पश्चात् डेढ़ वर्ष तक देश के विभिन्न प्रान्तों में स्वतन्त्र रूप से वैदिक धर्म का प्रचार किया तथा योगशिविरों का आयोजन किया। सन् १९८६ में मैंने विदेश जाकर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली व शिविरों के माध्यम से संस्कृत भाषा, वैदिक धर्म संस्कृति सभ्यता के प्रचार प्रसार की योजना बनायी, किन्तु पूज्य स्वामी जी की विशेष प्रेरणा से कि "जीवन का लक्ष्य ईश्वर का साक्षा-त्कार करना ही है, इसी के लिए मुख्य रूप से पुरुषार्थ करना चाहिए" मैंने उच्च स्तर के योगाभ्यास व दर्शनों के अध्ययन हेतु आर्य वन विकास के शिविर में प्रवेश लेने का निश्चय किया। शिविर में लगभग दो वर्ष के काल तक दर्शनाध्ययन एवं योगाभ्यास करने के उपरान्त अब मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि शिविर में सम्मिलित न होकर देश विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार करके चाहे कितना ही धन, यश: कीर्ति मैं प्राप्त कर लेता किन्तु जिस शाश्वत शान्ति आनन्द, स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लक्ष्य हेतु मैंने गृहत्याग किया था उस आध्यात्मिक लक्ष्य, मार्ग, साधनों के परिज्ञान से मैं वंचित ही रह जाता।

शिविर में मेरी उपलब्धियाँ

ब्र० ज्ञानेश्वरार्यः

(१) मुझे गृहत्याग किये लगभग १४ वर्ष हो गये हैं, यहाँ आर्यवन में आने से पूर्व थोड़ी सी संस्कृत भाषा एवं दर्शन, उपनिषद व वेद के कुछ सूत्रों, श्लोकों तथा मंत्रों को पढ़ सुनकर मैंने यह मान लिया था कि मैं पूर्ण वैराग्यवान हूँ, किन्तु सच्चे वैराग्य की स्थिति प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार के शुद्ध ज्ञान कर्म-उपासना की आवश्यकता होती है वैसा यहाँ सुन समझ कर, फिर अपने जीवन में इनका अभाव-सा देख कर, मैंने यह अनुभव किया कि यहाँ आने से पूर्व ऊँचे वैराग्य की दृष्टि से मेरा स्तर लौकिक-सा ही था कुछ विशेष नहीं था।

(२) पूज्य स्वामी जी द्वारा नित्यप्रति आध्यात्मिक सूक्ष्म विषयों पर, उदाहरण सहित, विस्तार से प्रकाश डालते रहने से, ईश्वर प्रणिधान, स्वस्वामिसम्बन्ध (ममत्व) ईश्वर, जीव, प्रकृति का व्याप्य व्यापक भाव, प्रलय अवस्था का सम्पादन, शरीर इन्द्रिय मनादि भौतिक वस्तुओं की जड़ता व नश्वरता, समस्त सांसारिक विषय-भोगों में ४ प्रकार का दुःख मिश्रित है, इत्यादि गंभीर विषयों को मैंने अच्छी प्रकार से समझा और ईश्वर की कृपा से समस्त सांसारिक विषयों से मन को रोककर निर्विषय करने या किसी एक विषय में ही लगाये रखने का कुछ सामर्थ्य प्राप्त किया है।

(३) वैदिक युग के उपनिषदादि प्राचीन इतिहास ग्रन्थों में, आप्त गुरुजनों का, राग द्वेष मोह से रहित जैसा आदर्श वात्सल्य भाव अपने शिष्यों के प्रति वर्णित है, वैसा ही पितृवत् व्यवहार मैंने यहाँ पूज्य स्वामी जी में पाया।

(४) ईश्वर–साक्षात्कार जैसे महान् लक्ष्य को लेकर चलने वाले उच्च कोटि के साधक को, मन–वचन–शरीर से यम–नियम का पालन जिस सूक्ष्म स्तर से करना चाहिये इसका परिज्ञान मुझे यहाँ आने के बाद हुआ।

(५) स्वयं के संस्कारों से अथवा दूसरों के द्वारा किये गये प्रतिकूल व्यवहारों से पदे पदे मन में राग द्वेषादि उत्पन्न हो जाते हैं परिणाम स्वरूप साधक अभिमानादि दोषों से ग्रस्त होकर, अपने महान् लक्ष्य को भूल जाता है और अनिष्ट कर लेता है, अथवा हताश–निराश होकर आध्यात्मिक मार्ग को ही छोड़ देता है। ऐसी समस्याएँ तथा विरोधी विचार प्रत्येक साधक के मार्ग में उत्पन्न होते रहते हैं। इन सब वितर्कों का समाधान किस शैली से करना चाहिए अथवा विरोध करने में कौन कौन से उपाय सहयोगी हैं और उनका प्रयोग कब कब करना चाहिए इन सब विद्याओं का विज्ञान मुझे यहीं पर हुआ।

(६) ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य में साधकों व बाधकों का पता लगाना बहुत ही कठिन है। अज्ञानता के कारण प्रायः योगाभ्यासी अनावश्यक एवं हानिकारक विचारों व वस्तुओं का संग्रह करता रहता है, दूसरी ओर आवश्यक एवं लाभकारी विचारों व वस्तुओं का परित्याग करता रहता है। अतः पुरुषार्थ करता हुआ भी साधक उन्नति के स्थान पर अवनति को प्राप्त होता जाता है। इन बातों से मैं भी ग्रस्त था जिनका विवेक मुझे यहाँ हुआ।

(७) अनेक बार पढ़ने–पढ़ाने एवं लिखित व मौखिक परीक्षाएँ देने से योग, सांख्य, वैशेषिक आदि दर्शनों को वेदानुकूल ऋषि मन्तव्यों के आधार पर अन्यों को पढ़ा सकने की योग्यता मुझे यहाँ मिली।

(८) विगत लगभग २ वर्ष में आध्यात्मिकता से सम्बन्धित अनेक महत्त्व पूर्ण सूक्ष्म विषयों पर बार–बार उपदेश सुनने से मेरे

लक्ष्य, विचार, वाणी व व्यवहार में बहुत परिवर्तन हुआ है ऐसा मैं स्वयं अनुभव करता हूँ। सैद्धांतिक रूप से ईश्वर प्राप्ति के मार्ग को मैंने अच्छी प्रकार से समझने का प्रयास किया है। गहन चिन्तन–मनन एवं निदिध्यासन द्वारा उसको जीवन में उतारने का पुरुषार्थ ही शेष है। किन्तु इसमें किञ्चित् मात्र भी संदेह नहीं कि जितना सुना समझा है उस पर चलने से ईश्वर प्राप्ति अवश्य हो जाती है।

(९) मैं इसको अपना परम सौभाग्य ही मानता हूँ कि इस पावन, रमणीक एवं एकान्त आर्यों के वन में, एक तपोनिष्ठ, योग्य गुरु के सान्निध्य में ऋषियों की दार्शनिक विद्याओं का पठन–पाठन करते हुए, जीवन के चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार हेतु मुझे एक स्वर्णिम अवसर मिला है।

(१०) मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है कि **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी** ने, आर्यावर्त के नवनिर्माण तथा विश्व कल्याण के लिए वैदिक वाङ्मय से सम्बन्धित ग्रन्थों की शिक्षा व प्रचार–प्रसार का जो संकेत अपनी वसीयत में किया है और उन संकेतों को पढ़ सुन कर, प्रतिवर्ष सैकड़ों कुलीन, पठित, धार्मिक, बुद्धिजीवी, वैराग्य के संस्कारों वाले युवक, समस्त सांसारिक धन, वैभव, पद, प्रतिष्ठा व भोग साधनों को ठोकर मारकर, कुछ करने कराने की भावना मन में लिए गृहत्याग करते हैं, उनका निर्माण जिस शैली व प्रबन्ध से संभव है, वह **आर्य वन विकास फार्म** में विद्यमान है। यदि यह परम्परा चल पड़े तो कुछ भी संदेह नहीं कि सैकड़ों–हजारों उच्च आध्यात्मिक स्तर वाले दर्शनिक विरक्त विद्वानों का निर्माण होगा जो **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** का उद्घोष करते हुवे समस्त विश्व में वैदिक धर्म की दुंदुभि बजा देंगे॥

मेरा संक्षिप्त जीवन-परिचय

ब्र० विवेकभूषण आर्य

मैं (ब्र० विवेकभूषण आर्य) संक्षेप से अपना जीवनपरिचय लिखता हूँ।

मेरा जन्म २२ दिसम्बर सन् १९५९ को दिल्ली में हुआ। मेरे पिताजी का पूर्वनाम श्री कृष्णजी शास्त्री था, वर्तमान नाम श्री स्वामी जीवनानन्द सरस्वती है। मेरी माता जी का नाम श्रीमती शान्तिदेवी जी आर्या है। मेरे पिता जी संस्कृत भाषा के अध्यापक एवं एक आर्य विद्वान् और प्रचारक थे। घर पर प्रतिदिन ईश्वरोपासना=(वैदिक सन्ध्या एवं यज्ञादि कर्मकाण्ड) तथा विद्वानों का सत्कार भी समय-समय पर होता था। परिणाम स्वरूप बचपन से ही मुझे वैदिक धर्म के पावन-संस्कार ईश्वर की कृपा से मिले। मैंने घर पर रहते हुये लगभग २० वर्ष की अवस्था तक अपने माता-पिता और भ्राताओं के साथ एकसौ बार सम्पूर्ण यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ यज्ञ के माध्यम से कर लिया था। इसके अतिरिक्त भी पूज्यपिताजी के साथ अनेक बार पारायण-यज्ञों में वेदपाठ के लिये भी जाया करता था। मैंने घर में रहते हुये चारों वेदों के सम्पूर्ण मन्त्रों का अनेक बार पाठ कर लिया था। हम महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत यजुर्वेदभाष्य को भी घर पर पढ़ते थे। मेरा अध्ययन आधुनिक रीति से ग्यारहवीं कक्षा तक आधुनिक विद्यालयों में हुआ। एक वर्ष दिल्ली-विश्वविद्यालय के अन्तर्गत बी०काम० कक्षा में अध्ययन किया। तत्पश्चात् आधुनिक अध्ययन में रुचि न रहने के कारण तथा श्री पू० स्वामी सत्यपति जी महाराज से साक्षात्कार हो जाने के कारण मैंने कॉलेज छोड़ दिया। बचपन से ही मेरी संगीत में भी रुचि थी। कॉलेज छोड़ देने पर चार- पाँच वर्ष तक मैंने एक संगीत-विद्यालय चलाया। इसी के साथ-साथ पू० स्वामी जी का सान्निध्य रखते हुये आधुनिक वाद्य-यन्त्रों के माध्यम से 'ब्रह्मचारी भजन मण्डली'

के रूप में वैदिक धर्म का प्रचार भी करता रहा। देश के विभिन्न प्रान्तों में भजनों द्वारा प्रचार-प्रसार करते हुये भी आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई। तब पू० स्वामी जी महाराज की प्रेरणा से भजन-मण्डली को भी छोड़कर वैदिक विद्वान् बनने एवं योगाभ्यास में विशेष समय लगाने का निश्चय किया। १५ दिसम्बर सन् १९८१ को उपरोक्त लक्ष्य की पूर्ति के लिये मैं घर से निकल पड़ा। उन्हीं दिनों मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। अनेक प्रान्तों में पू० स्वामी जी के साथ भ्रमण करते हुये साथ-साथ गौण रूप से प्रचार कार्य भी करते हुए मैंने श्री स्वाजी से ५ दर्शनों=(योग-सांख्य-न्याय-वैशेषिक-वेदान्त संस्कृतभाष्यों सहित) तथा उपनिषदों का भी अध्ययन किया एवं न्याय व सांख्यदर्शन की मौखिक परीक्षा भी दी। पू० स्वामी जी द्वारा आयोजित अनेक योग-प्रशिक्षण-शिविरों में भाग लेकर स्वयं लाभ उठाता रहा तथा योग्यतानुसार आसन दण्ड-बैठक व्यायामादि का प्रशिक्षण एवं योग न्यायादि दर्शनों का अध्यापन भी करता रहा। अब मेरी अवस्था २८ वर्ष पूर्ण हो गई है और २९ वाँ वर्ष प्रारंभ हो गया है।

शिविर में मेरी उपलब्धियाँ

ब्र० विवेक भूषण आर्य

इस षड्दर्शन एवं योग-प्रशिक्षण शिविर में-परमकृपालु, सच्चिदानन्द सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की महती कृपा से-जो उपलब्धियाँ मुझे हुई हैं, उन्हें मैं सब सज्जनों के हितार्थ पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से प्रकाशित करता हूँ। आशा है आप सब धार्मिक-जिज्ञासु जन इन्हें पढ़कर उत्साह व प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

(१) आदर्श गुरु के सान्निध्य में आर्ष पद्धति से ऋषियों के प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों को पढ़कर मेरे जीवन में जो परिवर्तन आया है,

उसे पूर्णरूप से तो मैं स्वयं ही अनुभव कर सकता हूँ, अथवा अथवा जिन महानुभावों ने मुझे लगभग ६ वर्ष पूर्व संगीत-विद्यालय में वाद्य यन्त्रों को बजाते-सिखाते हुए देखा-सुना था और अब वैदिक महान् ऋषियों के दार्शनिक ग्रन्थों को ईश्वर की महती कृपा से पढ़ाने और व्याख्या करते हुए देखा-सुना है, वे भी कुछ आकलन कर सकते हैं कि मैंने गत ६ वर्षों में क्या उपलब्धि की है। मैं जब अपने पूर्व के जीवन-वृत्त, उद्देश्य, मार्ग तथा जीवन-पद्धति की तुलना वर्तमान से करता हूँ, तो मुझे स्वयं आश्चर्य होता है कि क्या मैं वही हूँ जो आज से लगभग ६ वर्ष पूर्व था ?

(२) मैं स्वयं को बड़ा प्रारब्धवान् समझता हूँ कि ईश्वर की कृपा से मेरा जन्म एक कर्मकाण्डी, ईश्वर-विश्वासी, वैदिक-धर्मी=आर्य परिवार में हुआ। परिणाम स्वरूप जन्म से ही वैदिकधर्म के पावन संस्कार मुझे धार्मिकी माता एवं विद्वान् पिता के आशीर्वाद से प्राप्त हुए। मैं उनका कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझ पर वैदिक-धर्म के पवित्र संस्कार डालकर, आज के इस महादुःखी भौतिक-वाद के वातावरण से बचाकर, मुझ में धार्मिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कीं, और इस आध्यात्मिक मार्ग पर बढ़ाकर तन-मन-धन से मुझ पर यह उपकार किया। आज इसका फल यह हुआ है कि माता-पिता के द्वारा बोये हुए बीज, एक कुशल निर्देशक=गुरु के निर्देशन में अंकुरित, पल्लवित व पुष्पित हो रहे हैं। वैदिक ग्रन्थों में मैंने पढ़ा था कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनि लोग अपने आश्रमों में ब्रह्मचारियों को वेद-वेदांगों एवं वैदिक योग का प्रशिक्षण दिया करते थे, उसका क्रियात्मक रूप मुझे यहीं आकर देखने को मिला है। वर्षों तक पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से योग का सूक्ष्म विषय सुनते-सुनते, चिन्तन-मनन

करते-करते अब अनुभव में भी आने लगा है। परमकृपालु परमात्मा की महती कृपा से तथा गुरुदेव के स्नेहसिक्त आशीर्वाद से आज मैं मन को रोकने में समर्थ हो गया हूँ। अब मैं अपने मन को अनेक मिनिटों तक ईश्वर जैसे किसी एक विषय में अथवा सर्वथा निर्विषयक कर लेता हूँ। जो सज्जन मन को रोकना असम्भव मानते हैं, मैं उनसे निवेदन करना चाहता हूँ कि वे इस विचार को अपने मस्तिष्क से निकाल देवें। हाँ, मन को रोकना कठिन अवश्य है परन्तु असम्भव नहीं है। उचित साधनों व पद्धति से किसी भी संभव कार्य को किया जा सकता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

(३) योग के नाम से लाखों-करोड़ों व्यक्ति अपने-अपने ढंग से अभ्यास करते-कराते हैं, परन्तु प्रायः उन्हें सफलता नहीं मिलती। इसमें एक प्रमुख कारण रहता है—योगाभ्यास करने की ठीक पद्धति को न जानना अथवा योग की वैदिक पद्धति के अनुसार अभ्यास न करना। और कुछ सज्जन योगाभ्यास करने की योग्यता रखते हुए भी मिथ्या अभिमान में बैठे रहते हैं, कि मैं अमुक व्यक्ति के पास योग सीखने के लिये क्यों जाऊँ? इससे तो मेरा अपमान हो जाएगा, लोग मुझे उससे छोटा अथवा उसका शिष्य समझेंगे, इत्यादि अनेक बाधक कारण योगाभ्यास में असफलता के होते हैं। यहाँ पर इन सब बाधक कारणों को जानकर, हटाकर, सब विद्या-बल-धन-सम्पति का आदि मूल कारण ईश्वर को मानकर, विशुद्ध वैदिक पद्धति से योगाभ्यास किया-कराया जाता है; इसका परिणाम आज प्रत्यक्ष है कि इतने थोड़े काल में हमें इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता मिली है। हो सकता है आपको इन बातों को पढ़कर कुछ आश्चर्य भी हो रहा हो कि क्या वास्तव में उचित साधनों, पद्धति व योग्य गुरु

के निर्देशन में थोड़े ही काल में इतनी प्रगति हो सकती है ? मैं यह निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि जब उचित साधनों, विद्या, गुरु एवं पद्धति से डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, व्यापारिक व अन्य क्षेत्रों में प्रगति हो सकती है, तो उचित साधनों आदि से योग के क्षेत्र में क्यों नहीं हो सकती ? अर्थात् निश्चित रूप से हो सकती है। और ईश्वर की कृपा से हमारी प्रगति भी हुई है।

(४) योगाभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिये एक महत्त्वपूर्ण उपाय है 'ईश्वर-प्रणिधान' मुझे इस उपाय से बहुत सहायता मिली। प्रायः लोग इसका स्वरूप ठीक प्रकार से नहीं समझ पाते हैं। पूज्य गुरुवर्य के मुख से अनेक बार इस विषय को सुन-सुनकर तथा योगदर्शन के व्यासभाष्य के आधार पर इसकी वैदिक पद्धति को समझकर मैंने जो कुछ भी प्रयास किया, उससे मुझे पर्याप्त सफलता मिली। इसीप्रकार से निदिध्यासन के माध्यम से—'यह संसार नाशवान् है तथा चार प्रकार के परिणामादि दुःखों से युक्त है, मन-इन्द्रियाँ जड़ हैं',—इत्यादि अनेक सूक्ष्म विषयों को अच्छी प्रकार से समझा और पर्याप्त मात्रा में अनुभव भी किया, जिससे कि वैराग्य के स्तर में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

(५) योग का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय है-व्यवहार काल में सूक्ष्मता से यमनियमों का पालन करना। कभी भी अज्ञान, आलस्य-प्रमाद वा अन्य किसी कारण से अहिंसादि महाव्रतों को न छोड़ना और यदि छूट जायें, तो स्वयं दण्ड लेकर पुनः पालन के लिये कृतसंकल्प होना। इसे उपासना काल में सफलता-प्राप्ति के लिये योगाभ्यास की नींव कहा जा सकता है। इसके बिना व्यक्ति उपासना में सफल नहीं हो सकता। यहाँ आकर मैंने यम-नियमों के पालन में भी पर्याप्त पुरुषार्थ किया है। साथ ही

साथ योग के साधनों को अपनाने और बाधकों को हटाने में भी तीव्र प्रयत्न किया है।

(६) यहाँ अब तक लगभग दो वर्ष में योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय और वेदान्त इन पाँच दर्शनों पर गहन अध्ययन–चिन्तन–मननादि से अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया है। इन दर्शनों का अभ्यास करते–२ इनका उच्चस्तरीय अध्यापन करने की योग्यता भी मुझे यहाँ प्राप्त हुई है। पूज्य गुरुवर्य की आज्ञा से अपने सहपाठियों को श्री स्वामी जी के पढ़ाने से पूर्व इन पाँचों दर्शनों का अध्यापन करके मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि मैं ईश्वर की महती कृपा से एवं गुरुदेव के आशीर्वाद से वैदिक सिद्धान्त के अनुसार बुद्धिमान् व्यक्तियों को ये पाँचों दर्शन अच्छी प्रकार से पढा सकता हूँ। तथा मीमांसा दर्शन का भी छः अध्याय तक अध्यापन कर सकता हूँ।

(७) यहाँ पर लगभग पूरे दिन का संस्कृत भाषा में बोलने, का नियम होने से संस्कृत भाषा में वोलने लिखने व समझने की योग्यता भी बढ़ी है।

(८) वेद–मन्त्रों (आर्याभिविनय एवं वेद–भाष्य) पर चिन्तन मनन करने से वेद के सम्बन्ध में भी ज्ञान बढ़ा है तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की भाष्यशैली भी समझ में आई है।

(९) इसके साथ–साथ सेवा–परोपकारादि की भावना में विशेष वृद्धि हुई है तथा अनुशासन का पालन करने–कराने में भी वृद्धि हुई है।

मुझे विश्वास होने लगा है कि ऋषियों की इस पावन भूमि=आर्यावर्त देश में जिस भी व्यक्ति ने वैदिकधर्म की छत्रछाया में जन्म लिया है और जिसके हृदय में अस्तिकता, धर्म, सेवा, त्याग, बलिदान,

वैराग्य एवं महान् व्यक्ति बनने के संस्कार हैं, चाहे वे कितनी ही गहरी तहों के नीचे दबे हों, उन संस्कारों को उचित वातावरण, साधनों वैदिक पद्धति एवं योग्य गुरु के द्वारा उद्बुद्ध किया जा सकता है, जैसा कि मेरे साथ हुआ है। यद्यपि मेरे कुलीन संस्कार बहुत अच्छे थे, फिर भी वे यथोचित वातावरण, शिक्षा एवं योग्य गुरु के प्राप्त होने से ही उभरे हैं। यदि ये कारण नहीं बनते, तो संभव है मेरा जीवन भी वैसा ही होता, जैसा कि आज भौतिकता की लपेट में आए हुए किसी भी युवक का होता है।

जिस आदर्श निर्माण की परम्परा में संयुक्त होकर हम मानव-जाति के कल्याण के लिये कृतसंकल्प हैं, उसमें बहुत बड़ा योगदान आर्यवन विकास फार्म ट्रस्ट के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का है, जिन्होंने हम ब्रह्मचारियों के लिये भोजन एवं आवासादि का समुचित प्रबन्ध करके हमें इस ओर से सर्वथा निश्चिन्त कर दिया है, हम इनके आभारी हैं। तथा उन अनेक विद्वानों, महान् संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, उपदेशकों, प्रचारकों, माताओं व धार्मिक सज्जनों के भी हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस कार्य में सब प्रकार से हमारा सहयोग किया है और कर रहे हैं।

परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से ऋषियों के महान् ज्ञान–विज्ञान से तथा गुरुवर्य की प्रेरणा से साहस–उत्साह–विश्वास एवं आत्मबल बढ़ता जा रहा है कि परम दयालु ईश्वर की कृपा से हमें जितना भी सामर्थ्य मिला है और आगे मिलेगा, उसे हम ईश्वर का ही मानकर, जन–२ के हृदय में सच्ची आस्तिकता, वैदिक धर्म, संस्कृति, रीति–नीति के अंकुर स्थापित करने में समर्पित कर देंगे। ईश्वर हमें शक्ति प्रदान करे, हम ऐसा करने में समर्थ हो सकें।

आत्म–परिचय

ब्र० अर्जुनदेव वर्णी

मैं अर्जुनदेव वर्णी अतिसंक्षेप से अपना जीवन–परिचय लिखता हूँ।

मेरा जन्म लगभग सन् १९५१ में मध्यप्रदेश के महासमुन्द तहसील तथा पिथोरा क्षेत्र के अन्तर्गत रायपुर मण्डल के नरतोरा नामक ग्राम में बसे हुये साधारण शिक्षित एक कृषक परिवार में हुआ। मेरे पिता जी का नाम श्रीरामलाल जी आर्य व माता जी का नाम यशःवन्ती जी आर्या है। पिता जी और पारिवारिकजन धार्मिक आर्यविचारों से युक्त तथा सत्संगप्रेमी हैं। हमारे गाँव में एक बल्दूराम जी आर्य हैं, जिन्होंने गांव के अनेक आर्य–भद्रपुरुषों के सहयोग से वैदिक विद्वान् श्रीस्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती भिलाई (म. प्र.) वालों से अनेकधा पारायण यज्ञ व सत्संग करवाया, जिस कारण समूचा परिवार आर्यसमाज से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। परिवार के आर्यसमाज में आकृष्ट होने के कारण मेरा अपना भी आकर्षण आर्यसमाज के प्रति होना स्वाभाविक ही था। पूर्वजन्म के कुछ सुसंस्कार, विद्वानों के प्रवचनश्रवण व उनकी सत्प्रेरणा और सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों के स्वाध्याय से मेरी गुरुकुल में पढ़ने की इच्छा उत्पन्न हुई और गुरुकुल झज्जर, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार, गुरुकुल वृन्दावन आदि अनेक विद्यासंस्थानों को पत्र लिखकर प्रवेश हेतु नियमादि पूछा, परन्तु गुरुकुलों से उत्तर मिला कि यहां तो ८ वर्ष और अधिकाधिक १२ वर्ष का बालक ही प्रवेश पा सकता है। यह बात आज से २२–२३ वर्ष पहले की है। उस समय मेरी अवस्था १२ वर्ष से अधिक थी। गुरुकुलों से प्राप्त पत्रानुसार मेरा प्रवेश असम्भव था और मेरी गुरुकुल में पढ़ने की अभिरुचि प्रबल थी। गुरुकुलों के पाठ्यक्रमों का परिज्ञान हो ही गया था। अतः इस आशा से कि येन केन प्रकारेण मेरा गुरुकुल में प्रवेश हो जाये, मैंने घर पर ही रहकर विद्यालय की पढ़ाई को करते हुये गुरुकुलीय

दिनचर्या प्रारंभ कर दी और अष्टाध्यायी के लगभग समूचे सूत्रों को शनैः शनैः कंठस्थ कर लिया। और घर से निकलने की योजना बनाकर इसे पिताजी तक सीमित रखा। यद्यपि मेरी माताजी ममतावश मुझे घर से दूर भेजने के पक्ष में नहीं थी तथापि मैं विद्वान् बनूँ यह तो चाहती ही थीं। एक दिन उनकी अनुपस्थिति को सुअवसर जानकर पिता जी के आदेश से सन् १९६९ में गृहत्याग किया। इस समय मैं दशम श्रेणी उत्तीर्ण कर चुका था तथा मेरी अवस्था लगभग १८ वर्ष की थी। गृहत्याग कर आर्ष विद्या के पिपासु हो लगभग दो वर्ष तक अच्छे गुरु व विद्यासंस्थान की खोज में लगा रहा। अन्त में मेरा परिश्रम सफल ही रहा और हरयाणा में जीन्दमण्डलान्तर्गत गुरुकुल कालवा में योग्य तपस्वी गुरु श्रीआचार्य बलदेव जी के चरणों में बैठकर सन् ८१ से ८४ पर्यन्त अष्टाध्यायी क्रम से व्याकरण–महाभाष्य को पढ़ा। श्री आचार्य जी ने मुझे पुत्रवत् स्नेह देकर बड़ी निष्ठा से विद्यादान दिया। कुछ समयोपरान्त अर्थात् सन् १९७५ में योगनिष्ठ मान्य स्वामी-सत्यपति जी परिव्राजक गुरुकुल सिंहपुरा (रोहतक) हरयाणा के श्रीचरणों में दर्शन पढ़ने हेतु उपस्थित हुआ। मान्य स्वामी जी ने मुझे पढ़ाने के लिये सहर्ष अनुमति दे दी। इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। तब से अर्थात् सन् १९७५ से ही अधुनापर्यन्त मान्य स्वामीजी का सान्निध्य प्राप्त होता आ रहा है। स्वामी जी के श्रीचरणों में बैठकर मैंने तीन वर्ष अर्थात् सन् १९७५ से १९७७ तक न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग एवं वेदान्त इन पांचों दर्शनों को पढ़ा। इसी मध्यावधि में श्रीस्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक (जो अब नहीं रहे) से ज्वालापुर आर्यवानप्रस्थाश्रम में निरुक्त शास्त्र पढा। अध्ययनोपरान्त मुख्यरूपेण सन् १९८५ पर्यन्त अर्थात् यहां आर्यवनविकास में आने से पूर्व काल तक दिल्ली में २ एफ कमलानगर तथा तिमारपुर में श्री सुभाषचन्द्र जी आर्य के निवास स्थान को पत्रव्यवहारादि का केन्द्र बनाकर भारत के विभिन्न स्थानों में वैदिकधर्म का प्रचार करता रहा।

योग शिविर के मेरे अनुभव

ब्र. अर्जुनदेव 'वर्णी'

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों ही दृष्टिकोण से उन्नति तथा अवनति विषयक विचार करने पर मुझे योगशिविर में अवनति का कोई छिद्र दृष्टिगोचर न होकर सर्वतोमुखी उन्नति ही ही प्रत्यक्ष हुई। पूज्य गुरुवर्य मान्य स्वामी सत्यपति जी का योगमय जीवन, उदात्त एवं पितृवत् वात्सल्यपूर्ण व्यवहार प्रत्येक जिज्ञासु के मन को हर लेता है। मैं स्वामी जी को १३-१४ वर्षों से जानता हूँ तथा लंबे काल से स्वामी जी का सान्निध्य भी मुझे प्राप्त हो रहा है। स्वामी जी ने इससे पूर्व यद्यपि वर्तमान की भांति तारतम्य से कोई योग शिविर नहीं लगाया था, परन्तु वर्तमान में उन द्वारा नियोजित शिविर में विधिवत् नितराम डेढ़ वर्ष से अधिक काल से रहते हुये मैंने बहुत कुछ उत्कर्ष प्राप्त किया है। उसका कुछेक भाग संक्षेप से पूज्य गुरुवर्य के आदेशानुसार सर्व आर्य भद्रपुरुषों के बोधार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

(१) आध्यात्मिक जीवन का उद्गम—

घर पर रहते हुये धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय और कुछ सुसंस्कार होने के कारण ये विचार मन में अनेकधा उपस्थित होते थे कि अन्यत्र चलकर विद्वान् आचार्यों की शरण में बैठ वेदादि सत्यशास्त्रों को पढ़ें और विद्वान् बनकर राष्ट्र में कुछ कार्य करें। इस विचार का परिणाम यह हुआ कि एक दिन गृह त्यागकर और गुरुकुल में पहुँचकर विद्वान् आचार्यों से व्याकरण, महाभाष्य, दर्शन, निरुक्तादि वैदिक ग्रन्थों को पढ़ा और उसके पश्चात् वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न था, परन्तु आत्मा, परमात्मा का किञ्चित शाब्दिक ज्ञान तो था पर अनुभवात्मक ज्ञान विशेष नहीं था। आत्मविषयक ज्ञान के

अभाव में गृहत्याग कर भी वास्तविक शान्ति से मैं रहित था। पूज्य गुरुवर्य की सतत प्रेरणा व निर्देशन में रहने तथा निरन्तर अभ्यास से मुझे मनोवशित्व में कुछ प्रत्यक्षानुभव तथा आत्मोत्कर्ष प्राप्त हुआ है। वस्तुतः मनुष्य अपने जन्मजन्मान्तरों के प्रवाह से अनादि एवं वर्तमान जीवन के संजोये अनावश्यक, व्यथा को उत्पन्न करनेवाले कलुषित संस्कारों को विदग्ध करके अपने अंतःकरण को शुद्ध-निर्मल करना चाहे तो वह अपने जीवन में योग पगडण्डी पर आरूढ़ होकर चलना प्रारंभ कर दे। धागे के टूटने से मणियाँ बिखर जाती हैं, यदि वृक्ष-लतादिकों के मूल-जड़ को काट दिया जाय, तो वृक्षादि सूख जाते हैं, ऐसे ही जिस व्यक्ति के जीवन में योग साधना नहीं, तो उसके उत्थान का कोई आश्रय या आधार नहीं है, यह मुझे प्रत्यक्ष होने लगा है।

(२) मन विषयक यथार्थता का प्रकाश तथा निग्रह—

दर्शनों में वर्णित मन विषयक यथार्थ स्वरूप का अनेकधा अध्ययन करने, पूज्य गुरुवर्य द्वारा मन की जड़ता पर प्रकाश किये जाने और मन के स्वरूपानुसार व्यवहाराभ्यास से सम्प्रति आत्मा में मन की जड़ता के संस्कार दृढ़ होते जा रहे हैं। योग पगडण्डी पर चलने से मुझे मन की धारा द्वय का भी भलीभांति ज्ञान प्राप्त हुआ। अब मैं मन का नितान्त निरोध अर्थात् किसी भी विषय में मन को न लगाकर अधिकारपूर्वक ३-४ मिनिट और ईश्वर विषयक चिन्तन में लगभग १५-२० मिनट पर्यन्त किसी अन्य प्रमाणादि वृत्ति को उत्पन्न किये बिना ही मन का निरोध तारतम्य से कर लेता हूँ। इसी के परिणाम स्वरूप मैं ऐसा समझता हूँ कि यद्यपि मन का रोकना बड़ा परिश्रम साध्य है तथापि इसके साथ साथ यह भी अनुभव करता हूँ कि जितनी भलाई व्यक्ति के लिये निरुद्ध मन के होने पर हो सकती है,

उतनी मन को वश में न रखने की स्थिति में कदापि संभव नहीं। वास्तव में निरन्तर ध्यानाभ्यास के बिना मन को रागादि कुप्रवृत्तियों से निवारा (हटाया) नहीं जा सकता।

(क) मन जड़ है, न कि चेतन—

जड़ प्रकृति से यह मन बना है। अतः सिद्धान्ततः भी मन (=कार्यवस्तु) भी प्रकृति (=कारण वस्तु) के अनुरूप जड़ ही होगा। और जड़ पदार्थ परतन्त्र तथा अन्य किसी चेतनाधीन होता है। इसलिये यह मन आंख–कानादि के समान हमारा साधन तथा हमारे स्वयं के आधीन होने से हमें बलात् कहीं नहीं ले जा सकता। हम ही इसके सञ्चालक हैं।

(ख) मन द्वारा प्राप्तव्य समस्त संसारी सुख, दुःख मिश्रित—

दुःख से दूर और सुख से सदा युक्त रहने के इच्छुक हम समस्त प्राणी दुःख रहित, अपरिहार्य (=जो कभी हटाया न जा सके) और पूर्ण सुख ही की कामना करते हैं, परन्तु संसारी कोई भी ऐसा पदार्थ व सुख नहीं है जो परिणाम ताप आदि दुःख चतुष्टय से रहित तथा पूर्णतादि से युक्त हो। अतः मेरा अपना प्राप्तव्य और ईप्सित वस्तु केवल निश्चल सुख (=मोक्ष सुख) है। मैं मन को किसी संसारी सुखों व विषयों में नहीं लगाऊँगा।

(ग) ईश्वर व्यापक, शेष समस्त चराचर जगत् व्याप्य—

ईश्वर इतना महान् है कि चराचर समस्त विश्व में व्यापक है और इसके बाहर भी परिपूर्ण है। उसकी महत्ता इतनी है कि यह समस्त चराचर जगत् उसके किञ्चित् एक देश मात्र ही में स्थित है।

(घ) संसारी विषयों से विरक्ति—

मन को संसारी विषयों व सुखों से हटाकर मात्र विवेक, वैराग्योत्पादक बातों में लगाये रखने और तदनुकूल अभ्यास से मुझे मनोवशित्व में पर्याप्त सहायता मिली है।

(ङ) प्राणायाम—

विधिपूर्वक श्रद्धा से देश, काल और परिस्थिति के अनुसार यथा-सामर्थ्य प्राणायाम करने से भी मन के अवरोध में बहुत लाभ का अनुभव किया है।

इस प्रकार से उपरोक्त कतिपय उपायों का ही वर्णन किया गया है, जिनके द्वारा मनोनिग्रह होता और किया भी गया है।

(३) यम नियम का पालन—

योग पथानुगामियों की प्रत्येक मन, वाणी एवं शरीर की चेष्टा यम नियमानुसार होती है, तब ही सफलता मिलती है। मात्र उभयकालिक उपासना के समय ही में यमादि का कोई आचरण करके योग में सफलता प्राप्त करना चाहे तो कदापि संभव नहीं। यह मुझे प्रत्यक्ष अभ्यास करने से बोध हुआ। एक वाक्य में यदि कथन किया जाय तो मैं यह कहूँगा कि यम नियमानुसार जीवन जीने की पद्धति मैंने शिविर में सीखी।

(४) अध्यात्म मार्ग में साधनों एवं बाधकों का बोध—

'जैसा संग वैसा रंग' यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है। मुझे यद्यपि गृह त्याग किये हुये लगभग १६-१७ वर्ष हो चुके हैं और जब से त्याग किया है, तब से विद्वानों का ही संग प्राप्त हुआ। इसके साथ ही मैं अपना परम सौभाग्य इस बात के लिये समझता हूँ कि योगनिष्ठ पूज्य गुरुवर्य के सतत पथ-प्रदर्शन किये

जाने से मुझे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो गया है कि योग-पगडण्डी के साधन क्या हैं और बाधक क्या हैं ?

(५) स्वदोष दर्शन का सामर्थ्य—

मैं ऐसा समझता और मानता भी हूँ कि व्यक्ति को स्वयं का दोष प्रायः ओझल ही रहता है । बहुधा अन्यों के दोषों पर हमारी अपनी दृष्टि जाती है । परन्तु ऐसा किया जाना हमारी स्वयं की उन्नति में सब से बड़ा बाधक है, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ । यहाँ रहते हुये मैं स्वदोष के परिज्ञान तथा श्रवण होने के उपरान्त उसके दूरीकरण में स्वात्मबल की प्राप्ति होने से हर्षानुभव में वृद्धि का अनुभव करता हूँ ।

(६) ज्ञानवर्द्धन—

सम्यक्ज्ञान बिना सम्यक् गति नहीं और सम्यक् गति बिना प्राप्तव्य की प्राप्ति नहीं होती, तथा प्राप्तव्य की प्राप्ति के बिना व्यक्ति को सुख शान्ति नहीं मिलती । वस्तुतः यहाँ मेरा दार्शनिक ज्ञान, वेद मन्त्र के अर्थकरण की शैली का बोध, जीवन में प्रौढ़ता और अनुभवादि बहुत बढ़ा है । अभी चूंकि मीमांसा दर्शन का पाठ तो गुरुवर्य के चरणों में बैठ पढ़ा ही जा रहा है । अतः अन्य योगादि शेष पाँच वैदिक दर्शनों को ईश्वर की कृपा से पढ़ाने का सामर्थ्य मैं अपने में अनुभव करता हूँ । पूज्य गुरुवर्य ने मेरे अन्तश्चक्षुओं को ज्ञानाञ्जन की शलाका से खोलकर मुझे पर्याप्त समर्थ बना दिया है ।

(७) सब के साथ समता का व्यवहार—

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त संगठन-सूक्त है । ऋग्वेद में ज्ञान काण्ड है अर्थात् सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होना । इसे भी विज्ञ पुरुष जानते हैं । यथार्थ ज्ञान का फल समता-संगठन है ।

और यथार्थ ज्ञान योगात्मक जीवन के बिना कभी संभव नहीं है, तात्पर्य यह कि यथार्थ ज्ञान के होने पर ही समता का व्यवहार संभव होता है। योगी का हृदय ईश्वर के सतत सम्पर्क से ज्ञानरूपी प्रकाश से प्रदीप्त होने के कारण मनुष्य ही नहीं अपितु प्राणी मात्र के साथ समता से ओतप्रोत होता है। उसके सामने जाति, कुल, देश और कालादि व्यवधान नहीं डाल सकते। वह स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में जैसा वर्ताव करता है, वैसा विदेशियों के साथ भी। यह बात मैंने पूज्य गुरुवर्य में देखी।

सत्यार्थ-प्रकाश के तीसरे समुल्लास में महर्षि प्रवर देवदयानन्दजी ने पाठशाला में अध्ययनरत छात्रों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में लिखा है कि-"सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र के संतान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये।" मैंने इस सिद्धान्त का साकाररूप यहाँ योगशिविर में देखा। शारीरिक, आध्यात्मिक व विद्योन्नति में सबके साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता है।

(८) कृतज्ञता प्रकाश—

मैंने अधुनापर्यन्त जो कुछ भी प्राप्त किया है, वह ईश्वर की महती कृपा, मान्य गुरुवर्य की शरण प्राप्त होने और आर्यवन विकास फार्म के प्रधान श्री धनजीभाई, श्री अर्जुनभाईजी, श्री वेलजीभाई, मन्त्री श्री नानजीभाई, कोषाध्यक्ष श्री नारायणभाईजी और समस्त संस्थान के सभासदों तथा श्री पं० कमलेशकुमारजी आर्य, आर्य संन्यासियों, विद्वानों, आर्य-भद्र-पुरुषों, माताओं एवं आर्य समाजों के सहयोग से प्राप्त किया है। अतः मैं सभी सज्जनों का हृदय से आभारी हूँ।

अन्त में-मैंने उपनिषदादि आर्ष ग्रन्थों में पढ़ा था कि प्राचीन समय में आश्रमों में आत्मवेत्ता गुरुजन ब्रह्मचारियों को वेदादि सत्यशास्त्रों का पठन-पाठन एवं आत्मा-परमात्मा का बोध कराया करते थे तथा शास्त्रान्वित जीवन वाले होकर ब्रह्मचारियों को भी वैसा ही बनाने में पूर्ण यत्न करते थे। वह दृश्य मैंने यहाँ देखा। पूज्य गुरुवर्य स्वनाम धन्य मान्य श्री स्वामी सत्यपति जी ने प्राचीन शैली को अपनाकर ऋषि-मुनियों एवं महर्षि दयानन्द जी के उद्देश्यों को साकार रूप देने हेतु यह शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नतित्रय के स्तम्भ यथार्थ अध्यात्म विद्या को प्रवाहित करना प्रारंभ कर दिया है। चतुर्दिक् इस स्तुत्य कार्य का होना अत्यावश्यक है। इसका प्रचार एवं प्रसार जितना हो उतना ही स्वल्प है।

आत्म परिचय

ब्र० जगद्देव नैष्ठिक

मैं (ब्र० जगद्देव) संक्षेप से निज-जीवन-परिचय लिखता हूँ। मेरा जन्म संवत् २०१२ वि० सन् १९५५ ई० में हुआ। जन्म पत्रिका के आधार पर मुझे ऐसा स्मरण है। मेरा जन्म-ग्राम बरहटा (छोटा) है। जो कि मध्यप्रदेश के जिला-जबलपुर, तहसील-कटनी, पत्रालय रीठी के अन्तर्गत है। मेरे पिता जी का नाम श्री विजय सिंह तथा माता जी का नाम श्रीमती जनकरानी था। घर पर कृषि-कार्य होता था। मेरी अवस्था के १२ वें वर्ष में पिता जी का एवं १७ वें वर्ष में माता जी देहावसान हो गया। पारिवारिक व्यवस्था को हमारे ताऊ श्री दादूसिंहजी ने सँभाल लिया और भविष्य की आशा मुझसे रखने लगे।

माता–पिता की धार्मिकता का मुझ पर अच्छा प्रभाव पड़ा। परिवार में पौराणिक मान्यता के अनुसार श्री राम व श्री कृष्ण आदि को ईश्वर का अवतार माना जाता था। माता–पिता आदि को सत्य वैदिक धर्म व आर्यसमाज का परिज्ञान नहीं था। प्रारम्भ से ही विद्या-ध्ययन में मेरी रूचि थी। मैंने शास० उ० मा० विद्या० रीठी में ११ वी कक्षा उत्तीर्ण करके ठा० र० सिं० महाविद्यालय रीवा (म० प्र०) में बी० ए० द्वितीयवर्ष तक आधुनिक शिक्षा प्राप्त की। अबतक मेरा प्रसिद्ध नाम जवाहर सिंह था।

रीवा में ही सर्व प्रथम आर्य समाज से संपर्क हुआ। मैंने वहीं पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा निर्मित सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा। उसका मुझ पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ा। पौराणिक असत्य मान्यताएँ छूट गईं। जीवन के लक्ष्य की दिशा बदल गयी। वैदिक सत्य मान्यताओं को स्वीकार कर आर्यसमाज का सदस्य बन गया और साप्ताहिक सत्संगों में जाने लगा। मैंने अपना नाम 'जगत्प्रिय' रख लिया। जब गुरुकुल के विषय में परिज्ञान हुआ तो गुरूकुल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने की मेरी प्रबल इच्छा जागृत हुवी। एतदर्थ मैं महाविद्यालय का अध्ययन छोड़कर घर आ गया। घर पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र पढ़ा। वह अतीव प्रेरक सिद्ध हुआ। कुछ वैराग्य जागृत हुआ। एक दिन पारिवारिकजनों को बिना सूचना दिये घर से चल पड़ा। और दूसरे दिन वैशाख पूर्णिमा सं. २०३३ वि. बृहस्पतिवार, १३।५।७६ ई. को गुरुकुल होशङ्गाबाद (मध्य प्रदेश) में पहुँच गया। यहाँ के आचार्य जी ने मेरा उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार किया और पढ़ाया। मैंने इस आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद में शास्त्री कक्षा का प्रथम भाग उतीर्ण किया। यहीं पर शिक्षा, पाणिनि–अष्टाध्यायी–क्रम से संस्कृत–व्याकरण, साहित्य, छन्दः–शास्त्र, सांख्यदर्शन, आर्यसिद्धान्त, उपनिषदें और महर्षिकृत यजुर्वेद भाष्य का कुछ भाग पढ़ा। साथ ही

ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय भी किया। पश्चात् आर्ष गुरुकुल कालवा, जीन्द (हरयाणा) में पू. आचार्य श्री युत बलदेव नैष्ठिकजी से संपूर्ण व्याकरण महाभाष्य पढ़ा और व्याकरणाचार्य की उपाधि प्राप्त की। यही पर पू. आचार्य बलदेवजी से नैष्ठिक-दीक्षा ली। फिर पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़ (सोनीपत हरयाणा) में पू. आचार्य श्री विजयपाल विद्यावारिधिजीसे संपूर्ण 'निरुक्त' तथा श्रौतयाग संबन्धी एक लघु ग्रन्थ का अध्ययन किया। पश्चात् आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद में आकर लगभग ५ वर्ष तक संस्कृत-व्याकरण-साहित्य आदि का अध्यापन किया और महर्षि कणाद कृत वैशेषिक दर्शन पढ़ा।

आर्ष गुरुकुल कालवा में प्रथमवार एक ब्रह्मचारी द्वारा पू. स्वामी सत्यपति परिव्राजकजी को एक महान् सत्यवादी और योगी के रूप में सुना और साक्षात्कार किया था। तभी से उनके प्रति मेरी श्रद्धा थी। इसी करण तपोवन आश्रम देहरादून, अजमेर और गुरुकुल होशंगाबाद में इन पूज्य गुरुदेव स्वामी सत्यपति परिव्राजक जी कीं अध्यक्षता में आयोजित योग प्रशिक्षण शिविरों में क्रियात्मक वैदिक योग का प्रशिक्षण लिया। इन्हीं से तपोवन आश्रम में योगदर्शन, न्यायदर्शन एवं वेदान्त दर्शन का कुछ अध्ययन किया।

तपोवन आश्रम में पू. स्वामीजी ने आर्यवन रोजड़ (गुजरात) में षड्दर्शन अध्यापन एवं योग प्रशिक्षण शिविर आयोजित करने की योजना बताई। मैंने शिविर में प्रवेश लेने हेतु प्रार्थना की तो पू. स्वामीजी ने स्वीकृति दे दी। इस प्रकार चैत्र शु० १ प्रतिपदा सं. २०४३ वि. १० अप्रैल ८६ ई. से यहाँ आर्यवन में दर्शनों एवं योगका विशेष शिक्षण आचार्य प्रवर पू. 'स्वामी सत्यपति परिव्राजक'जी के श्री चरणों में बैठकर प्राप्त कर रहा हूँ।

मेरा मुख्य लक्ष्य सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का साक्षात्कार करना कराना है। उसकी प्राप्ति के लिये आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन, योगाभ्यास, पूर्णसत्याचरण एवं निष्काम सेवा पूर्वक ईश्वर प्रदत्त समस्त बल–विद्या–सामर्थ्य को आर्य समाज से सम्बद्ध रहकर वैदिक धर्म प्रचार में ही लगाऊँगा । इश्वर की महती कृपा पू. गुरूदेव के आशीर्वाद और धार्मिक सज्जनों के सहयोग से मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी ऐसी आशा है । शमिति ।

दर्शन एवं योग शिविर में मेरी प्रगति

ब्र. जगद्देव नैष्ठिक

ईश्वर की महती कृपा से जीवात्मा अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला होने पर भी सर्व क्लेशों से मुक्त होकर शाश्वत–सुख प्राप्त कर लेता है । यही मनुष्य जन्म का चरम लक्ष्य है । इस लक्ष्य की प्राप्ति ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरूओं से 'ईश्वर, जीव और प्रकृति' इन तीन अनादि तत्वों के सत्य स्वरूप को जानने, ईश्वराज्ञानुसार निष्काम भाव से शुभ कर्म करने और सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार, सर्व शक्तिमान् ईश्वर की स्तुति–प्रार्थना–उपासना करने से ही हो सकती है । आदर्श महापुरुष महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ईश्वर की कृपा से वेदो में वर्णित 'ईश्वर, जीव, प्रकृति' इन तीनों अनादि तत्वों के सत्य स्वरूप को पुनः प्रकाशित किया । उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के लिये 'आर्य सामज' की स्थापना की । इस समाज ने स्वराष्ट्र और संसार का बहुत उपकार किया ।

मेरा सौभाग्य है कि मैं भी इस आर्यसमाज संस्था से सम्बद्ध होकर वैदिक–धर्म के सत्य सिद्धान्तों को जानने में समर्थ हुआ ।

आर्षगुरुकुलों में वेदों के अङ्गोपाङ्ग रूप शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, उपनिषद् व दर्शन आदि के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ। इससे भी बढ़कर मैं अपना यह सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे पूज्य स्वामी सत्यपति परिव्राजक जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। ये आचार्य-प्रवर पुज्य स्वामी जी महाराज वैदिक आदर्शों के अनुसार चलनेवाले महान्-सत्यवादी, योगी, दार्शनिक-विद्वान्, ईश्वरभक्त, निष्काम-कर्तव्य-परायण, छल-कपट आडम्बर-मिथ्याभिमान-रहित, सरल स्वभाव युक्त महापुरुष हैं। संसारमें आज ऐसे पुरुष मिलने बहुत कठिन हैं।

पूज्य गुरुदेव की सन्निधि में रहकर इस आर्यवन (गुजरात) में आयोजित षड्दर्शन एवं योग-प्रशिक्षण-शिविर से विविध लाभ हुए और हो रहे हैं। गुरुदेव के उपदेश अनुभूति पर अधारित, शास्त्रानुमोदित, युक्ति प्रमाणों से सिद्ध, सारगर्भित, योग जैसे सूक्ष्म विषयों को भी सरलता से प्रकाशित करने वाले होते है। उनसे आध्यात्मिक-बौद्धिक वाचिक और व्यावहारिक आदि विविध प्रकार की प्रगति में विशेष सहायता मिली। मानो उपदेशों ने 'वाचं ते शुन्धामि...चारित्राँस्ते शुन्धामि' ॥ (यजु० ६।१४) इस वेद वचन को साकार कर दिया। इसके अतिरिक्त गुरुदेव के निर्देशन, अध्यापन, शङ्का-समाधान, प्रशिक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, सद्व्यवहार एवं सुप्रबन्ध के माध्यम से मैंने जिन न्यूनताओं को दूर करने और भद्रताओं को ग्रहण करने में ईश्वर की कृपा से पुरुषार्थानुकूल जो सफलता प्राप्त की है, उसको संक्षेपतः प्रस्तुत करता हूँ।

आध्यात्मिक प्रगति—(१) लक्ष्य में प्रकृष्टता—

गुरुकुल में आने से पहेले मेरा लक्ष्य लौकिक सुख को प्राप्त करना था उसके लिये मैंने पहेले तो एक अच्छा अध्यापक बनना चाहा। पश्चात् इस विचार को छोड़कर मण्डलाधीश अर्थात् कलेक्टर

बनने का विचार किया। गुरुकुल में आकर सामान्य रूप: से ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य तो बनाया किन्तु उस समय लक्ष्य–प्राप्ति का विशेष उपाय ज्ञात न था। यहाँ आर्यवन में तद्विषयक विशेष ज्ञान हुआ और लक्ष्य में प्रकृष्टता आई। अब मेरा लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना--कराना है। अर्थात् अपने व संसार के अज्ञान अधर्म और दुःखों को समाप्त करके सत्यज्ञान, सद्धर्म और नित्य आनंद को प्राप्त करना--कराना मेरा लक्ष्य बन चुका है। ईश्वर प्राप्ति के उपाय क्या हैं; विवेक वैराग्य--अभ्यास--समाधि का स्वरूप क्या है; विद्या–अविद्या बन्ध–मोक्ष क्या हैं, एषणाओं का नाश कैसे होता है, शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता को कैसे समझें, इन्द्रियों के सुखों को चार प्रकार के दुखों से मिश्रित जानकर उनसे कैसे निवृत्त हुआ जा सकता है; इत्यादि का परिज्ञान हुआ। अब मैं वैराग्य के स्तर में वृद्धि का अनुभव करता हूँ। उपायों का अनुष्ठान करने से मुझे लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी ऐसी मुझे आशा है।

(२) मन का निरोध – पूज्य गुरुदेव के सतत योग प्रशिक्षण और ईश्वर की कृपा से अब मन को सब विषयों से कुछ पलों तक रोके रखने और ईश्वर आदि किसी एक विषय में लगाये रखने में सफलता का अनुभव करता हूँ। मन को रोकना सरल कार्य नहीं है। 'मनो दुर्निग्रहं चलम्' ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। किन्तु पू. स्वामी जी सदृश सच्चे अनुभवी योगियों द्वारा बताये गए उपायों का श्रद्धा पूर्वक अनुष्ठान करने से किसी भी साधक को मन के रोकने में सफलता मिल सकती है, इसमें सन्देह नहीं। गुरुवर्य द्वारा बताए गए कुछ उपाय ये है—(१) जड़ प्रकृति से बना होने के कारण मन भी हाथ, पैर साइकल आदि की भाँति जड़ ही है। वह स्वयं कहीं नहीं लगाता। (२) जीवात्मा चेतन है वही मन को किसी. विषय में लगाता और किसी विषय से मनको हटाता है। (३) ईश्वर से भिन्न सभी

प्राकृतिक पदार्थों का वियोग और नाश होगा । अतः उनमें न आसक्ति रखे, न मन को लगावे । (४) प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर व्यापक है । वही दुःख छुड़ानेवाला और आनन्द देने वाला है । अतः उसी की प्राप्ति के लिये प्रयास करना उचित है ।

(३) उपासना में उत्कृष्टता—यद्यपि मैं पहले उपासना करने के लिये समय तो पर्याप्त लगाता था किन्तु बीच–२ में अनेकों वृत्तियों को उठाता रहता था । अब उनमें न्यूनता आई है । वृत्तियों को जानने और हटाने में सफल हो जाता हूँ । उपासना की उत्कृष्टता के लिये इन उपायों को अपनाता हूँ—(१) उपासना—काल में केवल ईश्वर की ही उपासना करनी है अन्य विषय पर विचार नहीं करना, ऐसा नियम बनाना और उस पर चलना । (२) ईश्वर, जीव और प्रकृति–विकृति के सत्यस्वरूप को विचारकर ईश्वर को ही उपासनीय समझना । (३) 'ओ३म्' तथा 'गायत्री–मन्त्र' का जप और वैदिक सन्ध्या के मन्त्रों का पाठ अर्थ सहित ईश्वर–समर्पण पूर्वक करना ।

(४) ईश्वर प्रणिधान—व्यवहार काल में भी ईश्वर को स्मरण रखने में कुछ सफलता मुझे मिली है । ईश्वर प्रणिधान के काल में मैं निज आत्मा में शान्ति का अनुभव करता हूँ । क्लेश मानो लुप्त से हो जाते हैं । ईश्वर के साथ आबद्ध रहने के लिये पू० गुरुदेव ने बतलाया कि—(१) ईश्वर को अपना अनादि माता–पिता, आचार्य, स्वामी, न्यायाधीश और परम सुखदाता मानकर उससे ही प्रेम करें । (२) प्रतिक्षण यह समझें कि ईश्वर मेरे शारीरिक, वाचनिक और मानसिक समस्त कर्मों को जान रहा है और उन कर्मों का फल भी यथावत् देगा । (३) समस्त अविद्या आदि क्लेशों को ईश्वर ही छुड़ा सकता है अन्य कोई नहीं, ऐसा समझें ।

मानसिक उन्नति :

१. पहले मेरा मन दूसरों के प्रतिकूल व्यवहार से अशान्त हो जाता था। मैं सोचने लगता था कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा प्रतिकूल व्यवहार क्यों किया। जैसा मैं चाहता हूँ वैसा क्यों न किया। अब निम्न लिखित उपायों को अपनाने से यह समस्या पर्याप्त मात्रा में दूर हो गई है-(१) प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है इसलिये वह सद्व्यवहार या दुर्व्यवहार कर सकता है। (२) सांसारिक सुख और सुख साधनों में राग रखना ठीक नहीं। क्यों कि उसमें बाधा पड़ने पर मानसिक दुःख होता है। (३) अपना परीक्षण भी करना चाहिये कि कहीं अज्ञानादि के कारण तो अच्छी बात भी विपरीत नहीं लग रही है। (४) प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान का स्तर भिन्न २ होने और जन्मजन्मान्तर के संस्कारों के कारण अनुचित व्यवहार कर देता है। ऐसा व्यक्ति दया का पात्र है। (५) क्षुब्ध होने से अपना और दूसरों का लाभ नहीं होता अपितु हानि ही होती है।

२. अपने दोषों को जानना, मानना और उन्हें छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। ऐसा किये विना सुधार की आशा नहीं की जा सकती। लौकिक व्यवहार प्रायः इससे उलटा ही देखने में आता है। अर्थात् अपने दोष को दोष न मानना किन्तु उसे गुण सिद्ध करना, दोष को छिपाने और दण्ड से बचने का पूरा प्रयास करना; दोष बताने वाले को अपना शत्रु समझना आदि। किन्तु यह लौकिक व्यवहार योग मार्ग के सर्वथा विपरीत है। योगाभ्यासी तो अपने दोषों को जानने के लिये दूसरों से निवेदन करता है; बताने पर मानता और कृतज्ञता प्रकट करता है। ईश्वर की कृपासे मैंने भी ऐसा प्रयास किया तो उसमें उत्तरोत्तर

सफलता मिली अनेक छोटे बड़े दोष दूर हो गए। अपने दोष सुनने हेतु मानसिक शक्ति बढ़ी।

अविद्या के कारण मनुष्य मिथ्याभिमान से अभिभूत होकर अपने आप को बड़ा समझता है। धन, विद्या बुद्धि बल और शारीरिक सौन्दर्य आदि को अपना समझता है। यदि वह अपने सत्यस्वरूप को समझ ले कि मैं जीवात्मा हूँ और सर्वथा अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला हूँ। ईश्वर प्रदत्त शरीर, बुद्धि, विद्या के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। सभी सद्गुण ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त हुए हैं। ऐसा जानने मानने से मिथ्याभिमान समाप्त होता और अपने दोषों को दोष मानने और दूर करने में व्यक्ति समर्थ होता है।

बौद्धिक विकास–

१. पू० गुरुदेव स्वामी सत्यपति परिव्राजक जी की कृपा से अब तक योग, सांख्य वैशेषिक न्याय और वेदान्त इन पाँचों दर्शनों को (संस्कृत भाष्यों सहित) पूर्णतः पढ़ा। शास्त्रों को सहाध्यायी ब्रह्मचारी–महानुभावों के साथ मिलकर विचारने से भी बहुत लाभ हुआ। पाँचों दर्शनों के लगभग दो सहस्र मूल–सूत्रों के स्मरण पूर्वक लिखित व मौखिक परीक्षाएँ दीं। इससे अच्छी योग्यता बनी। छठे मीमांसा दर्शन का अध्ययन चल रहा है। शाबर–भाष्य सहित ६ अध्याय पूर्ण हो चुके हैं। इस दर्शन को भी मैंने उत्तमता से समझने का प्रयास किया है। ईश्वर–कृपा से इन साढे पाँच दर्शनों को (संस्कृतभाष्य सहित) अन्यों को पढ़ा सकने की योग्यता को अपने अन्दर अनुभव करता हूँ। दर्शनों की विद्या के सहयोग से वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन आगे प्रवचनकाल में उत्तमता से कर सकूँगा. ऐसा मेरा विश्वास है। गुरुदेव के इन वचनों को भी ध्यान में रखूँगा–(१) दर्शनों

की विद्या को मोक्ष प्राप्ति का साधन समझें साध्य नहीं। (२) शास्त्रों में वर्णित सत्याचरण पूर्वक ही उनका प्रवचन करें। (३) वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल ही शास्त्रों का तात्पर्य समझें और समझावें। (४) निष्काम भाव से विद्या का दान करें; बदले की भावना से नहीं।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत यजुर्वेद–भाष्य के १० अध्यायों का अध्ययन भी परिश्रम पूर्वक किया गया। यजुर्वेद के ४ अध्यायों के मूलमन्त्रों को मैंने कण्ठस्थ भी किया। ईश केन कठ आदि एकादश उपनिषदों एवं महर्षिदयानन्द कृत आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय किया। इस सबसे वेद मन्त्रों के अर्थ और वैदिक सिद्धान्तों को सूक्ष्मता से जानने की योग्यता बढी। और वेद, दर्शन, आर्ष ग्रन्थों की विशेषताएँ जानी।

३. पू० गुरुदेव ने हमें महर्षि पतञ्जलि सम्मत वैदिक अष्टाङ्ग योग का गहन प्रशिक्षण दिया। इस शिविर में योग प्रशिक्षण को ही प्रधानता दी गई। ईश्वर की कृपा से अब मैं भी योग–शिविर आदि के माध्यम से वैदिक योग का प्रशिक्षण देने में सफल होऊँगा, ऐसा मुझे विश्वास है। इस सच्चे वैदिक योग के प्रचार –प्रसार से मिथ्या योग का प्रचलन समाप्त होगा। और 'योग-श्चित्तवृत्तिनिरोधः योग० १।२॥ के सत्यस्वरूप से लोग लाभान्वित होंगे।

वाचनिक प्रगति–

१. शिविर में प्रति दूसरे रविवार को होने वाले प्रवचन प्रशिक्षण से प्रवचन अभ्यास पूर्वापेक्षा उन्नत हुआ। उपदेश का उद्देश्य जन मानस से अविद्या–अधर्म को निवृत्त कर विद्या–धर्म को प्रतिष्ठित करना बतलाया गया। पाश्चात्य दार्शनिकों की मान्यताओं पर

भी समीक्षात्मक विचार—प्रतिपादन का अभ्यास किया। इससे यह ज्ञात हुआ कि पाश्चात्यों की मान्यताएँ किसी सूक्ष्म सत्य सिद्धान्त का निर्णय पूर्णतः करने में प्रायः असफल हैं। वैदिक मान्यताएँ ही सत्य एवं युक्ति प्रमाणों से युक्त हैं।

२. मेरी भाषा उचित निर्देशन के अभाव में आदेशात्मकता आदि दोषों से प्रभावित थी। उसके सुधार में यहाँ का प्रशिक्षण दण्ड, प्रायश्चित्त और अभ्यास सहायक हुए हैं। ज्ञात होवे कि यहाँ पर उपालम्भ, तर्जन, आदेश, कठोरता और व्यङ्ग आदि दोषों से युक्त भाषा का प्रयोग करना वर्जित है। सत्य, मधुर, हितकारी परिमित भाषा ही प्रयोग में लाने का निर्देश है।

३. पूर्णरूप से सत्य बोलना आजकल लोक में प्रायः अव्यावहारिक व असंभव समझा जाने लगा है। किन्तु योग में सर्वथा सत्य-भाषण के विना गति ही नहीं हो सकती, ऐसा जानकर मैंने सदा सत्य बोलने का प्रयास किया तो उसमें अच्छी सफलता मिली। अब अज्ञान से भी असत्य भाषण हो जाने पर मानसिक दुःख होता है। सत्य के अभ्यास के लिये तीव्र इच्छा, धैर्य और परीक्षण आवश्यक है।

यम—नियम के परिपालन करने—कराने पर पू० गुरुदेव विशेष बल देते हैं। वे इन्हें आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति की आधारशिला मानते हैं। गुरुवर्य के आचरण से ही इनके परिपालन की पर्याप्त रूप से क्रियात्मक—शिक्षा मिल जाती है। उनका कहना है कि स्वयं दुःख सहकर भी दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करो। मनुष्य ही नहीं, प्राणी मात्र से भी वैर न करो। सब सुखी हों, ऐसा चाहो। योगाभ्यासी को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूपी यमों और शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान रूपी नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है इसके विना उन्नति हो ही नहीं सकती।

यहाँ की नियमित दिनचर्या, आसन व्यायाम प्रशिक्षण, निदिध्यासन आत्म निरीक्षण, नियत काल तक मौन एवं संस्कृत-संभाषण आदि विविध नियमों व कार्यक्रमों का भी सर्वविध उन्नति करने में विशेष सहयोग मिला। पू० गुरुवर्य ने भोजन, वस्त्र, पुस्तक आदि का समान रूप से सुप्रबन्ध किया और कराया। उससे हमें किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ी।

मेरी इस सर्वाङ्गीण प्रगति में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से तन मन धन से जिन सज्जनों एवं संस्था के अधिकारियों ने सहयोग दिया उन सबका कृतज्ञ हूँ। ईश्वर की महती कृपा एवं पूज्य गुरुवर्य श्री स्वामी सत्यपति परिव्राजक जी के आशीर्वाद से हम सभी ब्रह्मचारी अधिकाधिक सामर्थ्य प्राप्त कर देश-देशान्तर में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने में सफल होंगे, ऐसी आशा है। शमिति।

मेरा संक्षिप्त परिचय

ब्र० आनन्दप्रकाश मेधार्थी

नाम- आनन्दप्रकाश मेधार्थी। **जन्म**- सन् १९५६, ७ अक्टूबर।
माता- श्रीमती गंगादेवी जी, **पिता**- श्रीख्यालीराम जी।
स्थान- ग्रा० वहराब्द, पो० अतरौली, जि० अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)
पूर्व-अध्ययन- मैट्रिक, व्याकरण-निरुक्ताचार्य।
पूर्वकार्य- संस्कृत-व्याकरण-अध्यापनादि।
वर्त्तमान में- आर्य वन विकास में षड्दर्शनाध्ययन एवं योग प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हूँ।

उपलब्धियाँ-

१. पूज्य स्वामी सत्यपतिजी महाराज के परिश्रम पूर्वक पढ़ाने और स्वयं पाठ पढ़ने से पहले तथा पश्चात् आवृत्ति करने से सांख्य,

योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त और मीमांसा दर्शन के ६ अध्याय (शाबरभाष्य) पढ़ा सकने की योग्यता प्राप्त की है।

२. पू० स्वा०. जी महाराज के ईश्वर, जीव, प्रकृति, योग एवं व्यवहार के विषय में सूक्ष्मता से सतत उपदेश-प्रवचन से सन्ध्या में विशेष रूचि, यमनियमों के पालन में प्रगति तथा मन को वश में रखने में कुछ-कुछ सफलता प्राप्त हुई है। और सिद्धान्त के विषय में बहुत सी भ्रान्तियाँ दूर हुई हैं।

३. पाक्षिक हिन्दी-संस्कृत में प्रवचनाभ्यास से प्रवचन का अच्छा अभ्यास हुआ है तथा कुछ-कुछ झिझक दूर हुई है।

इसके लिए मैं पूज्य-स्वामी जी, आर्यवन विकास के अधिकारियों तथा अन्य प्रत्यक्ष-परोक्षरूप से सहयोगी महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ।

मेरा जीवन-परिचय

ब्र. गोपाल आर्य, अवस्था लगभग २३ वर्ष

मेरा जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अमरावती मण्डलान्तर्गत तहसील अन्जनगांव (सुर्जी), पत्रालय-निमखेड़ (बाजार), ग्राम-हीरापुर में एक अशिक्षित सामान्य कृषक परिवार में हुआ। मेरे पिता जी का नाम श्री नारायणराव जी आर्य तथा माता जी का नाम श्रीमती चन्द्रकलाबाई है। मेरे माता-पिता अशिक्षित होते हुवे भी धार्मिक हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उनकी धार्मिकता का मुझ पर बाल्यकाल से प्रभाव बना रहा।

मैंने आधुनिक पद्धति से स्थानीय 'श्रीमती शेवंताबाई कालमेघ हाईस्कूल चौसाला' नामक विद्यालयमें दशम श्रेणी तक अध्ययन किया तत्पश्चात् श्री. पं. ज्ञानचन्दजी सिद्धान्ताचार्य की सत्प्रेरणा से तथा मान्य पिताजी की आज्ञानुसार मैं अन्तर्राष्ट्रिय-उपदेशक महाविद्यालय टंकारा

गुजरात में अध्ययन के लिये गया। वहाँ मैंने दो वर्ष तक पूज्य आचार्य प्रवर सत्यदेव जी विद्यालंकार की सन्निधि में रह कर वेद, धर्म और दर्शनादि का अध्ययन किया और वहाँ से द्वितीय वर्ष में 'सिद्धान्त विशारद' नामक उपाधि प्राप्त की इसके अनन्तर दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार में तीन वर्ष तक पूज्य आचार्य प्रवर श्री सत्यप्रिय जी शास्त्री की सन्निधि में रहकर साहित्य, दर्शन और व्याकरणादि का अध्ययन किया तथा वहाँ से 'विद्यावाचस्पति' नामक उपाधि प्राप्त की। उपदेशक विद्यालय टंकारा तथा दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार में अध्ययन करते समय पूज्य आचार्य वर्ग एवं उपाध्याय वर्ग का मुझपर स्नेह बना रहा तथा उनकी बार-२ सत्प्रेरणा से जीवन में मैंने बहुत कुछ सीखा। अंत में मैं पूज्य आचार्य वर्ग तथा उपाध्याय वर्ग का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

जब मैं हिसार विद्यालय में पढ़ ही रहा था, इसी अवधि में मैंने पत्रिकाओं के माध्यम से षड्दर्शन एवं योग प्रशिक्षण शिविर के विषय में पढ़ा कि वह शिविर योगनिष्ठ पूज्यपाद् श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक के आचार्यत्व में लगनेवाला है। मेरे मन में भी योग को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई तथा मैंने पूज्य स्वामी जी महाराज से पत्रव्यवहार तथा उनका साक्षात्कार किया। पूज्य स्वामीजी महाराज ने मेरा परीक्षण कर तथा इस शिविर में प्रविष्ट कर मेरे ऊपर महान् उपकार किया। अतः मैं पूज्य स्वामी जी महाराज का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

योग शिविर में मेरी अनुभूतियां

ब्र० गोपाल आर्य

यहां आने से पूर्व मैंने कुछ आर्षग्रन्थों का अध्ययन किया था, जिसके परिणामस्वरूप मेरी यह मान्यता बन चुकी थी कि वेदादि सत्य-

शास्त्रों का अध्ययन कर वैदिक विद्वान् बनना ही जीवन की सफलता है, परन्तु यहां आकर मुझे जीवन के वास्तविक लक्ष्य का परिज्ञान हुआ कि मानव जीवन समस्त दुःखों से छूटकर ईश्वर-साक्षात्कार के लिये प्राप्त हुआ है। यदि स्वामी जी महाराज मेरे जीवन की दिशा को मोड़ न देते तो मैं मात्र कुछ ग्रन्थों को पढ़कर ही सन्तोष कर लेता, और जो जीवन का वास्तिविक निर्माण होता उससे वञ्चित रह जाता। क्योंकि ज्ञान तो मनुष्य को चलने का मार्ग निर्देशित करता है, किन्तु उस मार्ग को अच्छी प्रकार समझे बिना एवं तदनुसार आचरण करके जीवन में स्थान दिये बिना यथार्थ लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। विगत लगभग दो वर्षों में मुझे यहां न केवल अपने जीवनोद्देश्य को समझने में सहायता मिली अपितु शारीरिक दृष्टि से हो, चाहे विद्या की दृष्टि से हो और चाहे आत्मिकदृष्टि से ही क्यों न हो मेरी सब प्रकार से पर्याप्त उन्नति हुई है। तथा भविष्य में भी निरन्तर उन्नति होगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। पूज्य गुरुदेव स्वामी सत्यपति जी के कुशल निर्देशन में जो मुझे यहां उपलब्धियाँ हुई हैं उनमें से कुछ-एक उपलब्धियों को संक्षेप से मैं सब सज्जनों के लाभार्थ प्रस्तुत करता हूँ, जिससे सब सज्जन प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

(१) **व्यवहार :-** महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने व्यवहारभानु में व्यवहार के सम्बन्ध में एक विशेष बात लिखी है, जिसका भाव यह है कि व्यक्ति चाहे विद्या कम भी पढ़ा हो किन्तु खान-पान, उठना-बैठना, लेन-देन और परस्पर वाग्व्यवहार में जो धार्मिक होकर यथायोग्य वर्तता है, वह कभी भी दुःखों को प्राप्त नहीं होता। यहाँ आने पर मैं उपर्युक्त व्यवहार में पर्याप्त सुधार की अनुभूति करता हूँ। यहाँ आने से पूर्व मेरा व्यवहार लोक प्रचलित व्यवहार जैसा ही था। आध्यात्मिक जीवन लौकिक जीवन से नितान्त विपरीत है। इसमें स्वार्थ और एषणाओं से

ऊपर उठकर अपना अहित करके भी दूसरों का हित साधना होता है। लौकिक व्यक्ति ईश्वर प्रदत्त बल, बुद्धि और विद्यादि का स्वामी स्वयं को मानता है तथा राग–द्वेष, काम-क्रोध-मोह, हर्ष-शोकादि से ग्रस्त होकर दुःखों को प्राप्त होता रहता है। परन्तु इसके विपरीत योग साधक इन सबका स्वामी ईश्वर को मानकर तथा ईश्वरार्पित होकर आनन्द को प्राप्त होता है। मैंने व्यवहार व उपासना काल में स्व-स्वामि-सम्बन्ध और ईश्वरप्रणिधानादि विषयों को समझने का प्रयत्न किया है तथा इसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है। व्यवहार काल में हास-परिहास, अपनी मान्यता को सर्वोपरि स्थान देना आदि दोष हमारी उन्नति तथा साधना में किस प्रकार बाधक होते हैं–इत्यादि बातों को मैंने अच्छी प्रकार समझने का प्रयत्न किया है, तथा इन दोषों को पर्याप्त मात्रा में हटाने में समर्थ हो रहा हूँ ऐसा मैं अनुभव करता हूँ। पूज्य स्वामी जी महाराज द्वारा पदे पदे मार्गदर्शन तथा अन्य ब्रह्मचारी सज्जनों के आचरण को देखकर मेरी सहनशीलता, विनम्रता, निर्भयता में पर्याप्त प्रवृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप अपने दोषों को सबके समक्ष सुनने तथा प्रकट करने का कुछ सामर्थ्य मुझे प्राप्त हुआ और यम नियमों को व्यवहार काल मे कैसे क्रियात्मकरूप दिया जाता है, इसका भी परिज्ञान मुझे यहीं पर हुआ। यह बात निश्चित है कि इन उपर्युक्त दोषों के रहते हुये हमारा व्यवहारकाल सुधर नहीं सकता और व्यवहारकाल के न सुधरने से उपासना काल भी अच्छी प्रकार से संपादित नहीं हो सकता। क्योंकि इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

(२) **स्वास्थ्य** :—शास्त्रों में आया है कि "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्" अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के

लिये 'स्वस्थ शरीर' ही मुख्य साधन है। जब तक व्यक्ति स्वस्थ तथा बलवान शरीर का निर्माण नहीं करता तब तक न तो वह आत्मिकोन्नति कर सकता है और न हि सामाजिकोन्नति अर्थात् देश जाति, धर्म की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है। यहाँ प्रातः चार बजे से लेकर रात्रि दस बजे तक नियमित दिनचर्या के अंतर्गत व्यायाम-आसन, प्राणायाम सात्विक आहार-विहार तथा विश्रामादि के माध्यम से मुझे पर्याप्त स्वास्थ्य लाभ हुआ। प्रायः व्यायाम आहार-विहारादि का ठीक-ठीक परिज्ञान न होने से व्यक्ति प्रयत्न करता हुआ भी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर पाता। इन उपर्युक्त सभी बातों का ज्ञान मुझे यहीं पर हुआ। यहाँ पर पूज्य स्वामी जी महाराज का वचन मात्र उपदेश ही हमारे लिये उन्नति का साधन सिद्ध होता है। इसके परिणाम स्वरूप हमारे जीवन में आलस्य प्रमाद, असावधानी आदि दोषों को स्थान नहीं मिल पाता है। ये आलस्यादि दोष हमारे जीवनोन्नति में किस प्रकार बाधक बनते हैं, यह भी क्रियात्मकरूप में समझने का एक विषय है। यहाँ मैंने इसे भी कुछ समझने का प्रयत्न किया।

(३) **विद्या** :—जैसा मैंने पूर्व निवेदन किया है कि मात्र कुछ ग्रन्थों को पढ़कर उपदेशादि करने में ही जीवन की सफलता है, ऐसा मैंने समझ लिया था, परन्तु विद्या के वास्तविक स्वरूप को जब यहाँ जानने का प्रयत्न किया तथा उसकी अपने आन्तरिक जीवन से तुलना की, तो विद्वानों और शिष्ट पुरुषों के आचरण से स्वयं को अज्ञानी पाया। यह सत्य है कि मनुष्य किसी विद्वान् योगी की सन्निधि में ही अपने आन्तरिक अज्ञान को जान पाता है। वैराग्यशतक में आया है कि—

यदा किञ्चज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित् किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः। (वैरा. ३|१)

इस श्लोक का भाव यह है कि मनुष्य थोड़ी-सी विद्या पाकर अभिमानी होकर स्वयं को सर्वज्ञ समझने लगता है, किन्तु जब महान् योगी विद्वानों का संग करता है, तब उसे ज्ञात होता है कि मैं तो अत्यन्त थोड़ा ही जानता हूँ—प्रायः अज्ञानी ही हूँ।

यहाँ आने पर मुझे विद्या का वास्तविक स्वरुप ज्ञात हुआ कि 'विद्या' केवल 'शाब्दिक' ज्ञान प्राप्त करना अथवा 'प्रवचन' करना ही नहीं अपितु 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या उसे कहते हैं जो मनुष्य को मुक्ति तक पहुँचाये। यहाँ मैंने लिखित तथा मौखिक परीक्षा सहित योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक तथा वेदान्त इन पाँचों दर्शनों का अध्ययन किया तथा छठे मीनांसादर्शन का छः अध्याय का अध्ययन कर लिया है, जिससे मेरे ज्ञान-विज्ञान में पर्याप्त प्रवृद्धि हुई। कुछ प्रौढ़ता भी प्राप्त हुई और अपने जीवन के लक्ष्य को समझने में सहायता मिली। यहाँ पूज्य स्वामीजी महाराज की पाठनशैली अत्यन्त सरल तथा बुद्धिगम्य होने से मैं दर्शन जैसे गंभीर विषय को सरलता से समझने में सक्षम हो सका हूँ और कुछ दार्शनिक बुद्धि भी बनी। ईश्वरप्रदत्त सामर्थ्य से योगादि पाँचों अधीत दर्शनों को स्वयं पुनरावृत्ति करके पढ़ाने का सामर्थ्य मैं अपने में अनुभव करता हूँ।

(४) भाषा-सुधार :—मेरी मातृभाषा और बोलचाल की भाषा मराठी होने से मुझे आर्यभाषा और संस्कृतभाषा का विशेष परिज्ञान नहीं था, किन्तु यहाँ नियमितरूप से नियत काल में व्यवहार की भाषा संस्कृत तथा आर्यभाषा होने से इन दोनों भाषाओं को बोलने तथा लिखने-समझने की योग्यता बढ़ी।

(५) आध्यात्मिकोन्नति :—आध्यात्मिक क्षेत्र में भी मेरी पर्याप्त उन्नति हुई। ईश्वर-प्राप्ति के लिये समस्त संसार में परिणामादि दुःखचतुष्टय की अनुभूति कर उसे हेय जानकर विवेक और वैराग्य

का संपादन करना होता है, परन्तु व्यक्ति अपने विपरीत संस्कारों के कारण अविद्या, राग द्वेषादि क्लेशों एवं ऐषणाओं से संतप्त रहता है। यहाँ वेद, दर्शनादि सत्य शास्त्रों में पठित तथा पूज्य स्वामी जी महाराज द्वारा शास्त्रान्वित प्रत्यक्षानुभूत तथा ज्ञापित शुद्धज्ञान, शुद्धकर्म और शुद्धोपासना के माध्यम से मैंने अपने आन्तरिक क्लेशों को जानने का यत्न किया और संघर्ष कर उनको हटाने में कुछ सामर्थ्य भी प्राप्त किया।

(६) मनोविषयक अनुभूति :—योग साधकों के मार्ग में मन के सम्बन्ध में पर्याप्त भ्रान्तियाँ रहती हैं। जिज्ञासु जन प्रायः मन को जीवात्मा के समान चेतन समझते हैं। यहाँ वेद, दर्शनादि ग्रन्थों में पठित तथा पूज्य स्वामी जी महाराज द्वारा अनुभूत प्रयोगों के ज्ञापन से मैंने मन के जड़त्व को समझने का प्रयत्न किया। अतः अब मन को कुछ पलों तक ईश्वर, जीव व प्रकृति जैसे किसी एक विषय में तथा कुछ पलों तक सर्वथा निर्विषय (=अपने ज्ञान का विषय किसी भी वस्तु तत्त्व को नहीं बनाना) कर लेने का मुझे सामर्थ्य प्राप्त हुआ।

(७) कृतज्ञता ज्ञापन :—यहाँ पूज्य स्वामी जी महाराज की शरण में रहकर ईश्वर की कृपा से अब तक जो कुछ भी मैंने प्राप्त किया है, वह सब आर्यवन विकास के अधिकारी जन तथा अन्य आर्य भद्रपुरुषों के सहयोग से प्राप्त किया है। अतः उन सभी आर्यसज्जनों-महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

(८) जीवन-उद्देश्य :—आज से लगभग दो वर्ष पूर्व मानव जाति के कल्याण के लिये मैंने जो प्रतिज्ञायें की थीं कि "मन, वचन, और कर्म से स्वयं अहिंसादि यमों, एवं शौच, सन्तोषादि नियमों का श्रद्धा से पालन करना तथा करवाना, अपने अज्ञान–अविद्यादि क्लेशों को दूर करके विद्या, धर्म की स्थापना करना तथा करवाना, स्वयं ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चलना" इन प्रतिज्ञाओं पर मैं परमपिता

परमात्मा की कृपा से तथा पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से आरूढ हूँ। परम कृपालु ईश्वर सद्बुद्धि, बल, विद्या प्रदान करे कि जिससे मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहते हुये निरन्तर योगाभ्यास तथा विद्याध्यापनादि के माध्यम से वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार व देश, जाति, धर्म की रक्षा के लिये अपने जीवन को लगाकर आहुति अर्पित कर सकूँ।

मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय

[ब्र० सत्य प्रकाश]

मेरा जन्म हरियाणा प्रदेश के गुड़गाँव जिले के फिरोजपुर झिरका नामक नगर में हुआ। माता–पिता के कथनानुसार मेरी जन्म तिथि १४ जून सन् १९५९ ई० है। मेरे पिता जी का नाम श्री सुगन चन्द जी था। प्रारम्भ में मेरी शिक्षा दशम श्रेणी तक हुई। तत्पश्चात् आधुनिक पद्धति से इलैक्ट्रानिकी व संचार विषय में स्नातक की शिक्षा ग्रहण की। लगभग दस मास तक एक उद्योग में कार्य करने के उपरान्त लगभग सवा तीन वर्ष तक, एक इंजिनियरिंग संस्थान में विज्ञान के विषयों का अध्यापन कार्य किया।

मेरे पूर्व परिवार की आर्यसमाज के प्रति कुछ श्रद्धा होने के कारण बचपन में, मैं आर्यसमाज के सत्संग व कार्यक्रमों में रुचिपूर्वक भाग लेता था। महाविद्यालय में अध्ययन के समय यद्यपि आधुनिक विषयों का अध्ययन प्रमुख विषय रहा, तथापि आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द जी के प्रति मेरी श्रद्धा और रुचि बनी रही। महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों का स्वाध्याय मैं श्रद्धापूर्वक करता था। अध्यापन–काल में ही निरन्तर स्वाध्याय, सत्संग आदि करते हुए मेरी यह मान्यता बन चुकी थी कि मानव जीवन का उद्देश्य स्वयं जन्मजन्मान्तरों के अविद्यादि बन्धनों से मुक्त हो कर आनन्द स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति करना

व कराना है। सन् १९८४ ई. के अक्तूबर मास में पूज्य गुरुवर्य स्वामी सत्यपति जी के एक योग शिविर में भाग लेने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ। पुज्य स्वामीजी के योगमय जीवन का मुझ पर अत्यधिक उत्तम प्रभाव पड़ा तथा मुझे आध्यात्मिक मार्ग में प्रवृत्त होने के लिये विशेष प्रेरणा मिली। तत्पश्चात् पुज्य स्वामी जी के अन्य शिविरों में भी भाग लिया। लगभग पौने दो मास तक संस्कृत भाषा का सामान्य अध्ययन किया। पुज्य गुरुवर्य की महती कृपा से १० अप्रेल सन् १९८६ ई० से आर्यवन विकास फार्म (गुजरात) में आयोजित शिविर में मुझे प्रवेश प्राप्त हो गया। ऋषियों की प्राचीन दार्शनिक विद्याओं का अध्ययन करते हुए जीवन के चरम लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार हेतु मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ, इसे मैं पुज्य गुरुवर्य का महान् उपकार मानता हूँ।

शिविर में मेरी उपलब्धियाँ

(ब्र० सत्य प्रकाश)

(१) आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ—

मुझे यहाँ आर्यवन विकास फार्म (गुजरात) में लगभग दो वर्ष होने को हैं। इस काल में मेरे सोचने-विचारने की शैली, वाणी व व्यवहार में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। अनेक युवक जिनके हृदय में आस्तिकता, धर्म, सेवा, त्याग वैराग्य एवं महान् व्यक्ति बनने के संस्कार होते हैं, विद्वान् बन कर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये घर-बार छोड़ कर निकलते हैं। परन्तु उनको योग्य गुरु, उचित वातावरण, साधन व वैदिक मार्ग उपलब्ध न होने से या तो वे मार्ग से विचलित हो जाते हैं अथवा कभी-२ मार्ग को छोड़ भी देते हैं। परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से पूज्य गुरुवर्य के निर्देशन में

उपरोक्त सभी बातें मुझे सहज ही उपलब्ध हो गईं। परिणाम स्वरूप मैं अपने जीवन में शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से उत्कर्ष का अनुभव करता हूँ। पूज्य गुरुवर्य का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ, जिन्होंने मुझे भौतिकवाद के महादुःखी वातावरण से बचा कर, आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ करके मेरे ऊपर महान् उपकार किया है, तथा कर रहे हैं।

(२) आन्तरिक जीवन का अध्ययन (दोषों का परिज्ञान)—

प्रायः व्यक्ति लौकिक स्तर पर जीवन यापन करता हुआ अपने आन्तरिक जीवन से अनभिज्ञ रहता है। विद्वानों की सन्निधि, सत्संग, स्वाध्यायादि से ही उसे अपने जीवन के वास्तविक स्तर का कुछ परिज्ञान होता है। यहाँ आकर मैंने अपने जीवन में अविद्या जनित राग, द्वेष, अस्मिता आदि मानसिक क्लेशों का अनुभव किया। वाणी व व्यवहार सम्बन्धी दोषों का परिज्ञान भी मुझे हुआ। अपने जीवन को यम–नियमों के विरुद्ध पाया। पूज्य गुरुदेव के निर्देशन में अपने दोषों, समस्याओं व विरोधी विचारों का मानसिक स्तर पर प्रबल विरोध करके ऋषियों के सत्य सिद्धान्तों को कुछ मात्रा में स्थापित करने से मैं अपने विरोधी विचारों को कुछ तनु करने में समर्थ हुआ हूँ। अपने दोषों को हटाने के लिये स्वयं दण्ड लेने=(प्रायश्चित्त करने) ईश्वर से ज्ञान, बल और और सामर्थ्य की प्रार्थना करने और स्वाध्यायादि से भी मुझे पर्याप्त सहायता मिली। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि योग–दर्शन में बताई गई तप–स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नामक क्रिया–योग की पद्धति से प्रत्येक व्यक्ति योग मार्ग पर आरूढ़ हो सकता है। और आगे चल कर अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

(३) यम–नियम के पालन में प्रगति—

ईश्वर साक्षात्कार के महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये योगाङ्गों का अनुष्ठान करना अत्यन्त आवश्यक है। पूज्य गुरुवर्य ने क्रिया-

त्मक रूप में यम-नियमों का वास्तविक सूक्ष्म स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। परिणाम स्वरूप यम-नियमों के पालन में, मैं प्रगति का अनुभव करता हूँ। पहले लौकिक स्तर पर मैं ज्ञान पूर्वक असत्य भाषण करता था। परन्तु अब अपने ज्ञान के अनुसार मैं सत्य ही बोलने का प्रयत्न करता हूँ। अज्ञान से या पिछले कुसंस्कारों से असत्य भाषण हो जाए तो दुःख होता है। तथा जब तक उसको प्रकट या प्रायश्चित्त आदि न करूँ तब तक शान्ति नहीं मिलती। स्वार्थ, परस्पर द्वेष और मान-सम्मान की इच्छा जैसी कुत्सित भावनाएँ निर्बल हुई हैं।

(४) आध्यात्मिक उन्नति—

यहाँ पर दर्शनों के अध्यापन के साथ-२ वैदिक योग का सत्य स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया। पूज्य स्वामी जी द्वारा नित्य-प्रति आध्यात्मिक सूक्ष्म विषयों पर प्रकाश डालते रहने से ईश्वर-प्रणिधान, स्वस्वामि-सम्बन्ध, ईश्वर की सर्वव्यापकता, सम्मान की अनिच्छा व अपमान की इच्छा करना इत्यादि गम्भीर विषयों को मैंने यहाँ समझने का कुछ प्रयास किया है। बार बार श्रवण-मनन-निदिध्यासन से शरीरादि सांसारिक पदार्थों के प्रति स्वस्वामि-सम्बन्ध न्यून हुआ है। तथा ईश्वर के प्रति प्रेम, आकर्षण व विश्वास में प्रवृद्धि हुई है। उपासना में रूचि बढ़ी है। ईश्वर की उपासना—अपने अज्ञान को मिटाने, दुःखों का नाश करने तथा जीवन को पवित्र बनाने का प्रमुख साधन है, ऐसा मान कर करता हूँ।

(५) दर्शनों व उपनिषदों का अध्ययन—

मैंने यहाँ पाँच दर्शनों का परीक्षा पूर्वक तथा मीमांसा दर्शन के ६ अध्ययों का अध्ययन पूर्ण कर लिया है। ईश्वर की कृपा से महर्षि पतञ्जलि कृत योगदर्शन को व्यास भाष्य सहित वैदिक सिद्धान्तानुसार पढ़ाने की भी योग्यता प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त दस उपनिषदों

का भी अध्ययन किया है। दर्शनों व उपनिषदों के अध्ययन से प्राचीन ऋषि-मुनियों के ज्ञान-विज्ञान के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी है। यह समझने का प्रयास किया है कि मानव को समस्त दुःखों से छुड़ा कर शाश्वत सुख की प्राप्ति का सारा संविधान दर्शनों व उपनिषदों में वर्णित है।

(६) प्रवचन अभ्यास व संस्कृत सम्भाषण की योग्यता—

पाक्षिक प्रवचन अभ्यास के कार्यक्रम के फलस्वरूप मेरी प्रवचन शैली में सुधार हुआ है तथा प्रवचन सम्बन्धी अनेक बातों का परिज्ञान हुआ है। उनमें से एक विशेष बात ये है कि प्रवचन लोगों के अज्ञान, क्लेश व अधर्म को दूर करने की पवित्र भावना से करना चाहिये, न कि अपने को प्रभावशाली सिद्ध करने के लिए। अपने मानसिक स्तर पर मैं इसके लिए प्रयत्न करता हूँ।

यहाँ पर अधिकांश समय में संस्कृत भाषा में बोलने का नियम होने से मेरी संस्कृत सम्भाषण की योग्यता में भी प्रवृद्धि हुई है।

(७) सेवा परोपकार की भावना में वृद्धि—

सेवा, परोपकार, त्यागादि की भावना में वृद्धि हुई है। जो कार्य पहले मान-सम्मान व लोक-दिखावे के लिये करता था, वह अब कर्त्तव्य भावना से करने का प्रयत्न करता हूँ। भूल से यदि इन कार्यों को करते हुए यदि लौकिक विचार उठा लूँ, तो उनका प्रबल विरोध करता हूँ।

(८) आभार प्रदर्शन—

पूज्य गुरुवर्य ने मेरे प्रसुप्त शुभ संस्कारों को उद्बुद्ध करके जीवन के चरम लक्ष्य पर आरूढ़ किया, अतएव मैं उनका अत्यन्त ऋणी हूँ। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि इस रूप में यदि

उनका सान्निध्य, ऐसा वातावरण व वैदिक मार्ग मुझे उपलब्ध न होता, तो मेरा जीवन भौतिकवाद से प्रभावित हो कर नष्ट हो जाता ।

यहाँ आर्यवन विकास के उदार अधिकारी महानुभावों ने हम ब्रह्मचारियों को भोजन आवासादि की समस्त चिंताओं से मुक्त करके अति उत्तम प्रबन्ध किया है । अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ । देश भर से विद्वानों, उपदेशकों प्रचारकों, माताओं व जिन आर्य सज्जनों ने हमारा सब प्रकार से सहयोग किया है, हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं ।

मेरी ऐसी दृढ़ मान्यता है कि मानव का निर्माण केवल मात्र प्राचीन ऋषि पद्धति के अनुसार पठन-पाठन व आचरण करने से ही सम्भव हो सकता है । इसी विश्वास के साथ मैं इस कठिन किन्तु सच्चो सुख शान्ति प्राप्त कराने वाले मार्ग में प्रवृत्त हुआ । ईश्वर की कृपा, पुज्य गुरुवर्य के आशीर्वाद तथा अन्य सभी सज्जनों के सहयोग से इस मार्ग पर मैं पूरी शक्ति से आरूढ़ हूँ । तथा भविष्य में भी आरूढ़ रहूँगा । ईश्वर मुझे शक्ति दें कि मैं अपने अज्ञान, असत्य व क्लेशों का नाश करके समाज, देश व विश्व के अज्ञान, असत्य व क्लेशों का नाश करने में यथाशक्ति सहयोग प्रदान कर सकूँ ।

'मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय'

ब्र० वीरेन्द्र

मैं (ब्रह्मचारी वीरेन्द्र) अपना परिचय लोकहितार्थ लिखता हूँ ।

(१) मेरा जन्म (माता पिता जी के अनुसार) ३० सितम्बर सन् १९५५ तदनुसार विक्रमी संवत् २०१२ को हरयाणा प्रान्त के रोहतक नगर में महर्षि दयानन्द मठ के समीप हुआ । मेरे पिता जी का नाम श्री सोहनलाल जी आर्य है तथा माता जी का नाम श्रीमति जयदेवी जी

था। घर में व्यवसाय लकड़ी तथा स्टील फर्नीचर की फैक्ट्री एवं दुकान का था। आधुनिक राजकीय परीक्षा के अनुसार मैं ११वीं कक्षा (प्रैप) की कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय सायंकालिक कालिज रोहतक में परीक्षा पूर्ण करके गुरुकुल चला गया।

(२) पिता जी आर्य विचार वाले थे। इस कारण मुझे भी बाल्य-काल से आर्यसमाज के सत्संगों, आर्यवीर दल की शाखाओं एवं शिविरों में भाग लेने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। महर्षि दयानन्द मठ रोहतक के विशेष उत्सवों में आये विद्वानों एवं गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के कार्यक्रम आदि को देख कर मेरी भी गुरुकुल में पढने की इच्छा जाग्रत होती थी। माता पिता जी को गुरुकुल में पढ़ने को कहता था परन्तु वे वहां का भय आदि दिखा कर टाल दिया करते थे। सत्संग के साथ–२ मुझे छठी कक्षा से ही कुसंग के कारण से चलचित्रादि देखने का दुर्व्यसन पड़ गया था। जो आगे चल कर १०वीं और ११वीं कक्षा में और भी तीव्र हो गया था। इधर रोहतक में घर-घर चल रहे "आर्य पारिवारिक साप्ताहिक सत्संग" में भी भाग लेता रहता था। इस प्रकार सत्संग और चलचित्रादि दुर्व्यसन साथ–२ चलते रहे।

(३) अन्त में सत्संग की ही विजय हुई। एकदिन रविवार के सत्संग में पूज्य स्वामी सत्यपति जी पधारे हुए थे। उस दिन सत्संग समाप्ति पर तेजी से वर्षा हुई। वर्षा से बचने को पूज्य स्वामी जी एक दुकान के नीचे खड़े थे। मैं भी उन्हें देखकर वहां पहुँचा। स्वामी जी से बात चीत हुई उन्होंने मुझे गुरुकुल में पढ़ने तथा ब्रह्मचारी बनने की प्रेरणा दी। इसी भावना को मैं वर्षों से मन में रखे हुए था। उस दिन स्वामीजी की प्रेरणा ने अग्नि में घृत डालने जैसा कार्य किया। घर वालों के न चाहते हुए भी मैंने गुरुकुल में जाने का पक्का निर्णय कर लिया। शीघ्र ही तैयारी करके मैं "गुरुकुल कालवा जि० जीन्द"

में पूज्य तपोनिष्ठ आचार्य श्री बलदेव जी के चरणों में उपस्थित हुआ। वहां मैंने संस्कृत तथा महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट आर्ष पाठ विधि के अनुसार वर्णोच्चारण शिक्षा से लेकर महाभाष्य तथा निरुक्त पर्यन्त एवं कुछ सत्यार्थ प्रकाश आदि सैद्धान्तिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया।

(४) प्रचार में अधिक रुचि होने से विभिन्न नगरों ग्रामों आदि में शिविर आदि के माध्यम से प्रचार कार्य किया। सैद्धान्तिक कमी के कारण प्रचार कार्य छोड़कर पूज्य योगनिष्ठ श्री स्वामी सत्यपति जी से योग, वैशेषिक, वेदान्त तथा आंशिक न्यायदर्शन एवं आठ उपनिषदें तपोवन देहरादून आदि अनेक स्थानों पर पढ़ी। पूज्य स्वामी जी की प्रेरणा एवं कृपा से मुझे चैत्र शुक्ला १ सं० २०४३ (१० अप्रैल १९८६) को आर्य वन विकास में प्रवेश प्राप्त हुआ। एतदर्थ मैं स्वामी जी का कृतज्ञ हूँ।

शिविर में मेरी उपलब्धियां

ब्र० वीरेन्द्र

मुझे घर छोड़कर इस मार्ग में आये लगभग तेरह वर्ष हो चुके हैं। जिन पूज्य स्वामी जी की प्रेरणा पाकर मैं गुरुकुल में पढ़ने गया था, उन्हीं की प्रेरणा से आर्यवनविकास में आयोजित दर्शनाध्यापन एवं योगप्रशिक्षणशिविर में प्रवेश पाने का शुभावसर प्राप्त हुआ। यहाँ रहकर लगभग दो वर्षों में ईश्वर की महती दया से जो मैंने ज्ञान-विज्ञान और योग के विषय में उपलब्धियाँ उपलब्ध की हैं, वह ज्ञान-विज्ञान और योगविषयक उपलब्धियाँ पूर्व के लगभग ग्यारह वर्ष की लम्बी अवधि में भी गुरुकुलवास एवं प्रचार काल में प्राप्त नहीं कर पाया था। इन उपलब्धियों के विषय में मुझे कल्पना भी नहीं

थी। श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की भारत-भारती नामक पुस्तक की यह यह पङ्क्ति कि—"हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी" यहां चरितार्थ हुई।

(१) अन्धकार से प्रकाश की ओर :-

यद्यपि यहाँ आने से पूर्व में संस्कृतभाषा–व्याकरण महाभाष्यादि तथा सैद्धान्तिक ग्रन्थों को पढ़कर व्याख्यान, व्यायाम–शिविरादि का आयोजन किया करता था और अन्यों की अपेक्षा अपने आपको आस्तिक समझता हुआ कृतकृत्य मानता था। अब यहाँ पूज्य स्वामी जी से दर्शनाध्ययन एवं क्रियात्मक योग तथा यम–नियमों का व्यावहारिक उपदेश, शुद्धज्ञान–कर्म–उपासना क्या है और कैसे करनी चाहिये, योग-मार्ग के साधन तथा बाधक क्या हैं और मन की जड़ता आदि सूक्ष्म विषयक ज्ञान की बातें सुनीं, तो ऐसा लगा मानो वस्तुतः अन्तश्चक्षु अभी अभी खुले हों। मैं तो बहुत अन्धकार में था यहाँ मुझे ज्ञान प्रकाश प्राप्त हुआ।

(२) सन्ध्या के विषय में भ्रान्तियों एवं भूलों का परिज्ञान:-

यद्यपि यहाँ आने से पूर्व भी मै सन्ध्या किया करता था, परन्तु वह सन्ध्या, सन्ध्या नहीं थी केवल दिखावा मात्र लोक लाज के कारण पन्द्रह मिनट वा आधा घंटा बैठ जाता था। इसमें भी कुछ काल तो लौकिक वृत्तियों के विचारने में तथा कुछ काल निद्रादि में व्यतीत होता था, शेषसमय में मन्त्र–पाठ भी कठिनता से कर पाता था। इतना भी इसलिये करता था कि कहीं लोग मुझे नास्तिक न समझें। महर्षि दयानन्द जी ने सन्ध्या के विषय में बताया है "भलीभांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाये परमेश्वर का जिसमें, वह सन्ध्या है।" (पञ्च०) अब मैं सोचता हूँ कि जो मैं लगभग १०–११ वर्षों तक सन्ध्या किया करता था, वह वास्तव में सन्ध्या नहीं थी, अब यहाँ आने पर

सन्ध्याविषयक अनेकों भ्रान्तियों एवं भूलों को दूर करने में पर्याप्त सफलता उपलब्ध हुई है।

(३) मन की जड़ता का ज्ञान तथा एकाग्रता का सामर्थ्य—

पहले मैं मन को चेतन मानता था कि—मन नहीं लगता, इंधर उधर चला जाता है, बहुत चञ्चल है, मन नहीं मानता इसे रोकना असम्भव है। अब यहाँ नित्य मनादि के विषय में उपदेशश्रवण और दर्शन—अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि मन एक प्रकृति से बना जड़ तत्त्व है। इसे हम चलाते हैं। जब हम चला सकते हैं तो रोक भी सकते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन मन की जड़ता पर चिन्तन—मनन करते हुए ज्ञान हुआ कि मन की जड़ता सिद्ध करके ही एकाग्रता बन सकती है, अन्यथा नहीं। सुनी—सुनाई बातों की अपेक्षा स्वयं अनुभव एवं व्यवहार में सिद्ध हुई बातों का शीघ्र और दृढ विश्वास होता है। लंबे काल तक अभ्यास करते रहने पर मुझे मन को एकाग्र करने में पर्याप्त सफलता मिली है। अब मैंने मन को बिना किसी विषय में लगाये एक दो मिनट रोकने का तथा लगभग १५–२० मिनट ईश्वरादि को विषय बनाकर रोकने का सामर्थ्य ईश्वर की कृपा से प्राप्त किया है। अब मन की जड़ता और एकाग्रता को समझने में संशय नहीं रहता।

(४) सन्ध्या की वास्तविक और वैज्ञानिक पद्धति का परिज्ञान—

मन्त्रपाठादि कर लेना वस्तुतः सन्ध्या नहीं है। सन्ध्या करने के लिये हमें पहले आवश्यक कार्यों से निश्चिन्त होकर विचारना चाहिये कि मैं इस आसन पर क्यों बैठा हूँ? इसके पश्चात् ईश्वर, जीव प्रकृति का पृथक् पृथक् चिन्तन, ओ३म् का तथा गायत्री मन्त्र का जप अर्थ और ईश्वर—प्रणिधान पूर्वक तथा सन्ध्या को अर्थ सहित करना चाहिये। इस पद्धति से परमात्मा के आनन्द की कुछ अनुभूति मैंने उपलब्ध की। ऐसी सन्ध्या की वैज्ञानिक पद्धति का ज्ञान प्राप्त हुआ।

(५) ईश्वर-प्रणिधान—

(क) ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा सन्ध्या में मुझे पर्याप्त सफलता उपलब्ध हुई। मैं पहले एक भजन बहुत गाया करता था कि—"प्रभू प्यारे से जिसका सम्बन्ध है, उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है" परन्तु ऐसा गाते हुये न तो ईश्वर के साथ सम्बन्ध जुड़ता था और न ही आनन्द प्राप्त होता था। यहाँ आकर ईश्वर-प्रणिधान द्वारा मैंने उपासना काल में ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने से कुछ कुछ आनन्द की अनुभूति की। इससे ईश्वर पर विश्वास भी बढ़ा। ईश्वर को जब उपासक सब कुछ का स्वामी मानकर उसमें तल्लीन हो जाता है तो उसे महान् आनन्द की प्राप्ति होती है। परमपिता परमात्मा सर्वव्यापक होते हुये कैसे कैसे हमारी रक्षा कर रहा है, ऐसा चिन्तन करते हुये लम्बे समय तक अभ्यास करने पर ईश्वर को अपने समक्ष मानकर पिता-पुत्र की भाँति परमात्मा के आनन्द स्वरूप होने का दृढ विश्वास तब बढा, जब ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया।

(६) दैनिक व्यवहार और दिनचर्या—

ईश्वर-प्रणिधान आदि अनुभूतियों का परिणाम यह हुआ कि मुझे दैनिक व्यवहार, सामाजिक व पारस्परिक दृष्टि से कैसे करना चाहिये इसका परिज्ञान हुआ। इस प्रकार व्यवहार में भी अनेकों परिवर्तन हुए। कैसे बोलना, चलना, खाना, पीना आदि व्यवहार करना चाहिये। यद्यपि यहाँ आने से पूर्व भी व्यवहार और दिनचर्या आदि ठीक बनाने का प्रयत्न किया करता था, फिर भी उसमें आलस्य प्रमाद आदि के कारण बहुत न्यूनताएँ थीं। उन न्यूनताओं को जान कर दूर करने में मुझे पर्याप्त सफलता मिली।

(७) यम-नियमों की सूक्ष्मता का परिज्ञान—

यद्यपि शब्द ज्ञान के आधार पर मैं व्याख्यानादि में अनेकों बार यम-नियमों की व्याख्याएँ करता था, परन्तु व्यवहार में विशेष अनुभूति

नहीं करता था। यहाँ आकर पूज्य स्वामी जी के मुखारविन्द से यम-नियमों के वास्तविक स्वरूप का श्रवण किया तथा उनके जीवन में भी क्रियात्मक रूप से देखा, जिसका मुझ पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। और यम-नियमों की सूक्ष्मता का विशेष परिज्ञान हुआ। यम-नियमों के वास्तविक स्वरूप को समझना ही कठिन है, फिर उनको जीवन में उतारना तो और भी कठिन है।

(८) योग के साधन तथा बाधकों का परिज्ञान :—

योग के साधनों का जब तक विशेष रूप से ज्ञान नहीं होता, तब तक भी योग में प्रवेश नहीं किया जा सकता। योग में बाधक 'अनावश्यक और हानिकारक विचार' आदि हैं। तथा योग के साधन यमनियमादि हैं। हम स्वयं ही कुविचारों को लाने में सबसे बड़े बाधक हैं, तथा दूसरों के दोषों को देखना, अपने दोषों को छुपाना ये भी योग में बहुत बड़े बाधक हैं, ऐसा मैंने अनुभव किया। राग-द्वेष से युक्त व्यक्ति बड़ी-२ हानियों को प्राप्त करता है, तथा योग में भी सफलता प्राप्त नहीं होती, ऐसा अनुभव करते हुए मैंने यहाँ रह कर यथा-शक्ति योग के साधनों को अपनाने तथा बाधकों को दूर करने का प्रयास किया और कुछ सफलता भी प्राप्त हुई।

(९) योग के विषय में भ्रान्तियों का निवारण :—

पहले मैं आसन व्यायाम, दण्ड-बैठक, लाठी आदि का प्रशिक्षण युवकों को दिया करता था। तथा इन आसन व्यायामादि को योग के अन्तर्गत मानता हुआ उपदेश किया करता था। जब कि आसन आदि शारीरिक स्वास्थ्य के लिये ही उपयोगी हैं। वस्तुतः योग दर्शनोक्त आसन ही योग का एक अंग है। 'स्थिर सुखमासनम्' सूत्र के अनुसार जिसमें स्थिरता पूर्वक सुख से बैठ कर ईश्वर का ध्यान किया जाय, वह आसन कहाता है, परन्तु व्यायाम के आसनों को करते हुए

न तो स्थिरता हो पाती है, और न ही ईश्वर का अच्छी प्रकार से ध्यान लगाया जा सकता है। यहाँ आने पर विशेष ज्ञान हुआ कि चित्त की वृत्तियों को रोक कर ईश्वर में मग्न हो जाना ही योग का वास्तविक स्वरूप है। इसी प्रकार से योग विषयक अन्य अनेक भ्रान्तियों का भी निवारण हुआ।

(१०) विविध योग्यताएँ :—

१. यहाँ संस्कृत सम्भाषण का विशेष नियम होने से संस्कृत सम्भाषण की योग्यता में विशेष वृद्धि हुई।

२. महर्षि दयानन्द कृत 'आर्याभिविनय' तथा यजुर्वेद के लगभग १० अध्यायों का महर्षि कृत भाष्य का स्वाध्याय करने से वेद मन्त्रों के अर्थों को समझने की योग्यता भी बढ़ी।

३. पूर्व मुझ में सेवा-भाव में न्यूनता थी, परन्तु अब यहाँ के प्रशिक्षण से सेवा भावना में वृद्धि हुई।

४. पाक्षिक प्रवचन अभ्यास के द्वारा, मुझे अपने प्रवचन सम्बन्धी अनेक भूलों का परिज्ञान हुआ। जैसे प्रवचन वेदादि सत्यशास्त्रों के सिद्धान्तानुसार प्रमाणों से युक्त होना चाहिये, प्रवचन की भाषा कठोर और खण्डन प्रधान न होकर मृदु व मण्डन प्रधान होनी चाहिये तथा व्याकरण की दृष्टि से भी शुद्ध व प्राञ्जल होनी चाहिये।

५. गुरुमुख से श्रवण के उपरान्त जब तक मनन व निदिध्यासन न किया जाये, विद्या का साक्षात्कार कदापि नहीं हो सकता। यहाँ आधा घंटा प्रतिदिन निदिध्यासन का विशेष नियम होने से मुझे ईश्वर, जीव, प्रकृति का स्वरूप, मन का जड़त्व आदि आध्यात्मिक विषयों पर चिन्तन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तथा

अपनी शंकाओं और दोषों का भी परिज्ञान हुआ। जिससे उन्हें दूर करने में पर्याप्त सफलता मिली।

६. पूज्य स्वामी जी द्वारा यहाँ पर वैदिक सिद्धान्तों का पर्याप्त परिज्ञान करवाया गया। जिससे वैदिक–सिद्धान्त–सम्बन्धी सूक्ष्म प्रश्नों का उत्तर देने व शंका समाधान की मेरी कुछ योग्यता बढ़ी।

७. यद्यपि लगभग तीन दर्शनों का अध्ययन मैंने पूर्व भी किया था, परन्तु विशेष योग्यता नहीं बन पाई थी। मैंने यहाँ पर योग आदि पाँच दर्शनों का मौखिक व लिखित परीक्षा पूर्वक तथा छठे मीमांसा दर्शन के ६ अध्यायों का अध्ययन किया। जिससे मैं दर्शनों को समझने में योग्यता का अनुभव करता हूँ। अब मुझे विश्वास हो गया है कि कुछ परिश्रम करके मैं अन्यों को योग, सांख्य और वैशेषिक दर्शन पढ़ाने में समर्थ हूँ। तथा विशेष परिश्रम करके वेदान्त दर्शन को भी पढ़ा सकता हूँ।

८. इसी प्रकार से क्रियात्मक योग जो हमें प्रतिदिन उपदिष्ट किया जाता है, उसे भी सिखाने का कुछ सामर्थ्य उपलब्ध हुआ है।

(११) अनेक चिन्ताओं से मुक्ति :—

यहाँ आर्य वन विकास में भोजन–आवास आदि की उत्तम व्यवस्था है। पूज्य स्वामीजी की आज्ञानुसार हम कोई भी पत्र व्यवहार स्वतन्त्र रूप से न करें तथा अपने पास धनराशि भी न रखें। इस प्रकार के नियमों ने हमें एकाग्रता पूर्वक विद्याध्ययनादि के लिये निश्चिन्त कर दिया है। क्यों कि हमें पुस्तक, फल, घृत, वस्त्र आदि की व्यवस्था के विषय में कोई चिन्ता नहीं है। यह मैं निश्चय पूर्वक अनुभव करता हूँ कि जितना संरक्षण माता–पिता नहीं कर पाये, उससे कहीं अधिक संरक्षण पूज्य स्वामीजी महाराज हमारा कर रहे हैं।

(१२) आर्यजन विकास केन्द्र :—

ये आर्यवन विकास ही नहीं, अपितु आर्यजन विकास केन्द्र भी है। जहाँ मानव निर्माण की वास्तविक प्राचीन ऋषि-मुनियों की पद्धति उपलब्ध है। यहाँ पर अध्ययन के साथ-२ यम-नियमों को जीवन में उतारने के लिये विशेष बल दिया जाता है। इसलिये यह आर्यजन विकास केन्द्र भी है।

(१३) यदि मैं यहाँ न आता तो? :—

वर्तमान में, मैं यह अनुभव करता हूँ कि यदि मैं यहाँ आकर अपने जीवन का निर्माण न करता, तो जैसे मैं स्वयं भटका हुआ था, ऐसे ही हजारों लोगों को भी भटका कर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में बाधक बन कर, विश्व की बहुत बड़ी हानि करता। जैसा कि आज कल प्रायः संसार में हो रहा है।

(१४) मेरे जीवन का लक्ष्य :—

मेरे जीवन का लक्ष्य आजीवन ब्रह्मचारी रहते हुए वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्ययन, अध्यापन तथा तदनुसार जीवन का निर्माण करना है। मैं अपने जीवन से असत्य, अज्ञान व क्लेशों का नाश करके समाज, देश व विश्व से असत्य, अज्ञान व क्लेशों का नाश करने में यथाशक्ति सहयोग प्रदान करूँगा। मैं ईश्वर की कृपा से स्वयं को सुयोग्य बना कर देश-विदेश में विद्या-धर्म के प्रचार-प्रसार में अपने जीवन को समर्पित कर दूँगा, ऐसा मुझे आत्मविश्वास है।

(१५) कृतज्ञता प्रकाशन :—

अन्त में परमपिता परमात्मा का धन्यवाद करते हुए, जिन गुरुओं ने मुझे ज्ञान, विज्ञान तथा योग विद्या प्रदान कर सुयोग्य बनाया है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आर्यवन विकास के अधिकारियों का जिन्होंने भोजन-आवासादि की सुव्यवस्था की है, उनका

भी मैं हृदय से आभारी हुँ । देश-भर से सहयोग करने वाले आर्य सज्जनों व माताओं आदि ने इस पुनीत कार्य में सहयोग प्रदान किया है, उन सबके प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

"संक्षिप्त जीवन-परिचय"

—ब्र० ब्रह्मदेव

नाम — ब्र० ब्रह्मदेव ।

पिता का नाम — श्री गोविन्द भट्ट ।

,, ,, व्यवसाय — वैद्य ।

जन्म-स्थान — मंगलौर (कर्नाटक) ।

जन्म-तिथि — ६ जून १९४५ (संवत् २००२) ।

अध्ययन — एस. एस. एल. सी. (मंगलौर); डिप्लोमा होटेल मैनेजमैण्ट (मुम्बई) ।

कार्यानुभव—१२ वर्ष तक मुम्बई में होटेल-उद्योग ।

अन्यमतों के साथ सम्पर्क — दो वर्ष तक रामकृष्णाश्रम में रहा । विशेष रूप से स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दजी से प्रभावित होकर उद्योग छोड़कर आश्रम में रहा ।

गुरुकुल में अध्ययन — ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन करने की जिज्ञासा हुई । रामकृष्णाश्रम में पठन-पाठन की कोई व्यवस्था नहीं थी । सर्वप्रथम गुरुकुल एटा और गुरुकुल कालवा में अष्टाध्यायी क्रम से व्याकरण तथा निरुक्त का अध्ययन, और स्वाध्याय के रूप में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय,

छान्दोग्य, बृहदारण्यक व श्वेताश्वतरोपनिषद् आदि उपनिषदों का अध्ययन किया। सामान्य रूप से योग, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शनों का अध्ययन किया।

आर्यवन विकास फार्म में प्रवेश — विशेष रूप से दर्शनों का अध्ययन एवं क्रियात्मक योग प्रशिक्षण में निपुणता प्राप्त करने के लिये स्वामी सत्यपति जी से निवेदन किया। स्वीकृति प्राप्त हुई। स्वामी जी के पास योगदर्शन, सांख्यदर्शन एवं कुछ वैशेषिक दर्शन पढ़ा। लगभग ७ मास तक मैंने इस शिविर में (अर्थात् आर्यवन विकास फार्म में) भाग लिया।

"उपलब्धियाँ"

जैसे योगदर्शन में उपासना विद्या का वर्णन है और महर्षि दयानन्द सरस्वती-लिखित ऋ०भा०भू० द्वारा वर्णित उपासना विद्या का क्रियात्मक जीवन में अभ्यास करने का विशेष अवसर मुझे स्वामी सत्यपति जी के सान्निध्य में प्राप्त हुआ। विशेष रूप से मन को विषयों से दूर करने का उपाय, योग के बाधक और उन्हें दूर करने के उपाय स्व–दोष का पूर्ण दर्शन, स्व–स्वामि–सम्बन्ध की पहचान, मन–विषयक यथार्थता का बोध, यम–नियम का मनसा–वाचा–कर्मणा सम्यक् प्रकार से अभ्यास, आहार में संयम, ऋषि–मुनियों की जीवन–पद्धति का सम्यक् पालन करना, योग–विद्या के गम्भीर रहस्यात्मक विषयों की अति–सरलता से दृष्टान्त–उदाहरण–सहित सामान्य व्यक्तियों को समझाने की शैली, आध्यात्मिक विद्या के मर्म को साक्षात्कार करके लाभ और हानि का विचार समझना और लेखनी द्वारा प्रकट कराना, जीवन का सर्वांगीण विकास कराना अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति कराना, ये सब विद्या मुझे आर्यवन विकास फार्म में पर्याप्त मात्रा में समझ में आई। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस भूमण्डल

पर था आर्य जगत् में आप जैसा इस विद्या को समझाने वाला मेरी दृष्टि में नहीं है। आपने इस आध्यात्मिक विद्या को महर्षि के पश्चात् क्रियात्मक रूप में जीवन में उतारने की विशेष पद्धति को आर्य वन विकास फार्म में प्रचलित किया है। वैसे तो सैद्धान्तिक तौर पर बड़े-२ विद्वान् सब जानते हैं परन्तु क्रियात्मक जीवन में पूर्ण निष्क्रियता एवं निराशा ही देखने को मिली। आपने इसे सिद्ध करके आर्य-जगत् में एक विशेष आध्यात्मिक-क्रान्ति मचाई और यह विशेष रूप से जगत् में फिर इसी प्रकार से प्रचार होगा एवं 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यह वेदवाणी व्यावहारिक रूप ले सकेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। आपके सान्निध्य में यदि मैं नहीं रहता अथवा आर्यवन विकास फार्म में मुझे प्रवेश न मिलता तो मैं 'अरबों रुपये की इस आध्यात्मिक विद्या से' पूर्ण रूपेण वंचित रह जाता। और दूसरे गुरु की खोज की अभिलाषा थी। अब यह सब दूर हो गया है। मेरे बहुत समय के अनावश्यक हानि में ही बीतने के अवसर को आपने दूर किया।